१. आत्म–याग 4–2–1992

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता–परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि कि वह परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप है और याग उसका आयतन है, उसका गृह है, उसका सदन है और वह उसी में वास कर रहा है इसलिए वह परमपिता–परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप है। आज का हमारा वेद–मन्त्र उस परमपिता परमात्मा जो यज्ञोमयी स्वरूप है उसका प्रायः वर्णन कर रहा है और प्रत्येक वेद मन्त्रों में उस ज्ञान और विज्ञान की महिमा अथवा उसके विशाल रूपों का वर्णन होता रहा है।

परमपिता–परमात्मा का याग

तो आज का हमारा वेद मन्त्र यह कह रहा था यजनम् प्रवाहा वर्णस्सुतम् यह जो परमपिता परमात्मा का यह जो भव्य जगत है यह एक प्रकार की यज्ञशाला है और इस यज्ञशाला में वह परमपिता स्वयं इसके ब्रह्मा है, आत्मा यज्ञमान है और इन पंच महाभूत मानो देखो कोई इनमें से अध्वर्यु है कोई उदगाता है और कोई होता बन करके बेटा अपने में याग कर रहा है। तो यह कैसी भव्य सुन्दर एक यज्ञशाला है जिसके ऊपर मानव सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक मानो अपने में अन्वेषण करता रहा है, अनुसन्धान करता रहा है और इसीलिए आभा को ले करके मानव ज्ञान और विज्ञान में मानव अपनी उड़ाने उड़ता रहा है। तो विचार–विनिमय यह कि आज हम उस परमपिता परमात्मा की भव्य यज्ञशाला में सब विद्यमान है और विद्यमान होकर अपने जीवन में और बाह्य जगत में भी मानो सुगन्ध करना हमारा कर्तव्य है। आज हमें कहीं से यह प्रेरणा आ रही है क्या याग के ऊपर अपना एक विचार दिया जाए क्या **याग** अपने में कितना भव्यतम माना गया है क्योंकि परमपिता परमात्मा का यह जो संसार है इसमें नाना प्रकार का औषध विज्ञान है और मानवीयत्व एक सूत्र में सूत्रित हो रहा है। तो ये कैसी अपनी–अपनी आभाओं में परिणीत हो करके बेटा! याग कर रहा है। एक मानव अपनी एकन्त स्थली में विद्यमान हो करके और अपने विचारों से सुगन्धित कर रहा है तो वह भव्य याग कर रहा है और जब साकल्य को ले करके बेटा! इन्द्रियों का साकल्य बनाता है तो उसी साकल्य को ले करके वह अपने हृदय को पवित्र बनाता रहता है। **तो हृदय ही बेटा! यज्ञशाला है।** जिस हृदय में मानो देखो नेत्र रूप को लाते है वह हृदय में समाहित हो जाता है मानो घ्राण से सुगन्ध लाते हैं वह हृदय में और श्रोत्रों से शब्द आता है वह हृदयों में है और मुनिवरो देखो घ्राणं ब्रहे रसना से नाना प्रकार का रस आता है रवशमीतम्ब्रहे मानो वह भी हृदय में प्रवेश हो जाता है नाना त्वचा से प्रेम आता है उसकी भी मानों प्रतिष्ठा हृदय में होती है। मेरे पुत्रों! देखो ये मन संसार की वस्तुओं को लाता है वह भी हृदय में है। तो वेद का ऋषि कहता है हृदयम् ब्रह्मणा वर्णस्सुतम् मानो देखो हृदय रूपी यज्ञशाला में तुम याग करने लगो वही तो संसार में एक योगी है कर्म सात्विक है जो मानो देखो हृदय रूपी यज्ञशाला में याग करना जानता है और पाँच यह ज्ञानेन्द्रियों का मानो चरू बना करके अथवा साकल्य बना करके उसको हूत कर रहा है। तो विचार आता रहता है बेटा! याग अपने में बड़ा विचित्रतम् एक क्रियाकलाप है जिसके ऊपर सृष्टि के प्रारम्भ से ही मुनिवरो देखो यह एक नृत होता रहा ऋषि–मुनि अपने में एकन्त स्थलियो में विद्यमान हो करके ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ते रहे है इसी आशा को ले करके।

महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज का विद्यालय

तो आओ मेरे पुत्रो! देखो इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं प्रगट करने आया हूँ केवल यह आओ आज मैं तुम्हे महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के विद्यालय में ले जाना चाहता हूँ। जहाँ महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के यहां नाना प्रकार के यागो का चयन होता रहा है। मेरे पुत्रो! देखो प्रातः कालीन **नैतिक शिक्षा** देते हुए आचार्य,

महर्षि याज्ञवल्क्य मुनिमहाराज अपने ब्रह्मचारियों के मध्य में विद्यमान होना और विद्यमान हो करके मानो उनको कहा यज्ञम् ब्रह्मा हरंणम् ब्रहा क्रतम देवाः हे ब्रह्मचारियों! आओ तुम **यागिक** बनो और अपनी मानो देखो अपनी प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को साकल्य बना करके और हृदय में प्रवेश करते चले जाओ। मेरे प्यारे! क्योंकि संसार में जो विद्यालय पवित्र होते है तो उन विद्यालयों में जो महानता होती है तो ब्रह्मचारी अपने में पवित्र बनता है और जब ब्रह्मचारी और विद्यालय दोनो ही पवित्रता की प्रतिभा में प्रतिष्ठित होते है तो मानो देखो यह समाज और प्राण अपने में पवित्रता की आभा में परणित हो जाता है।

याग की प्रेरणा

तो मेरे प्यारे! महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज **याग की प्रेरणा** दे रहे थे। ब्रह्मचारियों से कहते हे ब्रह्मचारियों! तुम सबसे प्रथम मानो अपने में गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करो जो गार्हपथ्य अग्नि तुम्हारे अन्र्तहृदयों में प्रदीप्त हो रही है। जिस अग्नि को तुम देखो प्रदीप्त करके शिक्षा का व्यवधान करते हो शिक्षा को अपने में धारण करते हो मानो देखो उस गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करो जिस अग्नि के माध्यम से मानव अपने में पवित्रता में परिणीत हो जाता है। तो तुम मानो उस पवित्रता को अपनाने का अपने में धारयामि बनो और ब्रह्मचारी जब इस प्रकार जब न्यौदा में वेदमन्त्रों का अध्ययन, श्रवण करते रहे तो उन ब्रह्मचारियों में एक ब्रह्मचारी उपस्थित हुआ। यज्ञदत नाम के ब्रह्मचारी बोले हे प्रभु! मैने आप से कई समय प्रश्न किया है जब भी याग का कोई प्रसंग आता है उसी समय मैं आप से यह प्रश्न करता हूँ। क्या **हे प्रभु! हम याग कैसे करे?** उन्होंने कहा याग एक सुन्दर यज्ञशाला हो और यज्ञशाला मानो नाना खम्बो वाली होनी चाहिए जैसे देखो इस मानव देखो आत्मा का यह मानवीय शरीर माना गया है और इसका यह पंच–महाभूतो के लोक में रहने वाला है इसी प्रकार तुम मानो देखो यागिक बन करके यज्ञनम् ब्रह्मा यज्ञम प्रवहा लोकम वर्णस्सुतम मानो देखो याग को प्रारम्भ करो जिसके द्वारा तुम्हारा कल्याण हो और तुम मानो देखो चौबीस खम्बो वाली देखो वह नौ सप्तम नाना प्रकार के खम्बो वाली तुम्हारी यज्ञशाला हो और तुम्हारा मधु, रोगनाशक, और देखो पुष्टिवर्धक और मुनिवरो देखो वह ब्रह्मणे ब्राहा यह चार प्रकार की वृत्तियों में साकल्य तुम्हारा सदा हुआ होना चाहिए। उस साकल्य के द्वारा तुम याग करो और याग करके कहो प्रणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा और समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा कह करके तुम हूत करो क्योंकि उसी से तुम्हारी प्राण सत्ता पवित्र बनती है प्राणो में एक सूत्र में प्राणित हो जाता है। तो बेटा! देखो कल्याण की **सुतः भावना अप्रतम** मानो देखो एक महानता की उग्रतियाँ उत्पन्न हो जाती है। मेरे प्यारे! देखो यज्ञदत ब्रह्मचारी ने यह श्रवण किया वह बड़े प्रसन्न हुए। याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि वेद मन्त्रों का अध्ययन होना चाहिए और वेद मन्त्रो के साथ तुम्हारा देखो स्वाहा होना चाहिए जिससे तुम्हारा अन्तः अन्तरिक्ष पवित्र बन जाये। ब्राह्म जगत और आन्तरिक जगत को, दोनो को पवित्र बनाना बहुत अनिवार्य है।

समिधा द्वारा याग

मेरे पुत्रों! देखो यज्ञदत ब्रह्मचारी बोले हे प्रभु! मैं जानना चाहता हूँ कि जब मानो देखो कहीं यह सुविधा हो, असुविधा हो जाए, कि मैं यज्ञम ब्रह्मे यज्ञ करना चाहता हूँ परन्तु **न तो साकल्य है और न यज्ञशाला है तो याग कैसे करे?** तो उन्होंने कहा कि तुम नाना प्रकार की अमृत समिधा ले करके और अग्नि को प्रदीप्त करो और कहो प्रणाय स्वाहा अपानाय स्वाहा कह करके हूत प्रारम्भ करो मानो देखो अग्नि समिधा के द्वारा मानो प्रदीप्त की जाती है देखो जैसे आन्तरिक जगत में तुम अपने में देखो प्रत्येक इन्द्रियों को ले करके इनकी समिधा बना करके और तुम अपने हृदय को पवित्र बना करके इसी प्रकार तुम ब्राह्मीय जगत वाले यज्ञशाला को तुम अग्नि के द्वारा चयन करते हुए अग्नि का चयन करके समिधाओं में मानो देखो अमृतम में पाही तुम उसको अमृत को अपने में धारण करने वाले बनो। मेरे प्यारे! देखो ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि कहते है क्या उस समय तुम याग करोगे तो मानो देखो तुम्हारा अन्तर्आत्मा इन्द्रियों सहित पवित्र बन करके तुम देवलोक में प्रवेश हो जाओंगे।

जल के द्वारा याग

मेरे प्यारे! देखो उन्होंने कहा धन्य है प्रभु! देखो यज्ञदत नाम के ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु! मैं यह जानना और चाहता हूँ कही भगवन यह भी हमें प्राप्त न हो; **कहीं अग्नि भी न हो, समिधा भी न हो और याग करने की हमारी इच्छा है तो हम कैसे करे?** उन्होंने कहा हे यज्ञदत ब्रह्मचारी! तुम याग करना चाहते हो तो मानो जल को अञ्जलि में लो और जल को अञ्जलि में ले करके कहो प्रणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा कह करके तुम हूत प्रारम्भ करो। मानो देखो याग मम ब्राहा याग को प्रारम्भ करो जिससे तुम्हारा जीवन अमृतमय बन जाए। मानो देखो क्योंकि यह जो जल है यही तो आपो कहलाता है जब हम माता के गर्भस्थल में होते है तो हम माता के गर्भस्थल में मानो देखो हमारा ओढन भी जल है और बिछौना भी हमारा जल है और पाशे भी जल के ही होते है। तो जल में मुनिवरो! देखो हम सब मग्न रहते है और माता की शिक्षा का अध्ययन करते रहते है, प्रेरणा पाते रहते हैं। माता बालक को अपने गर्भस्थल में बालक को प्रेरित बना देती है। तो विचार आता है मेरे पुत्रों देखो यह जलम ब्रह्मा आपो को ले करके, जल को ले करके तरलमयी मानो देखो उसको हूत प्रारम्भ करो वह जो हूत है वही तो तुम्हारा जीवन है। तो मुनिवरो देखो ब्रह्मणम् ब्रह्मा व्रतम् यही जल है बेटा। देखो जहां जल को अग्नि उष्ण बनाने वाली है और जल ही आपो में मानो देखो चन्द्रमा उसे शीतल बनाता है और चन्द्रमा अमृत देता है। मेरे प्यारे! समुद्रों से देखो चन्द्रमा का समन्वय रहता है। वह वहां से जल लेता है औषध बना करके वह मानो देखो वनस्पतियों में प्रवेश करा देता है। उन्हीं वनस्पतियों का रस एकत्रित हो करके बेटा! **रेचस्तव** बन करके वही माता के गर्भस्थल में बेटा! देखो शिशु का उससे निर्माण होता है और निर्माण करने वाला वह मेरा प्यारा प्रभु है। बेटा! निर्माण के लिए मैने तुम्हें कई कालो में प्रगट करते हुए कहा है यह परमपिता–परमात्मा निर्माण करने वाला; मन–मस्तिष्क का और मेरे प्यारे! देखो उसी के पंच–प्राण अथवा पंच उप–प्राण, दस प्राणो का निर्माण होता है। मेरे प्यारे! देखो वह बुद्धि भी जैसे बुद्धि, मेधा, ऋतम्रा, और प्रज्ञावी। मेरे प्यारे! देखो **बुद्धि से दृष्टि–पात करता है मेधावी से उसे प्रयोग में लाता है, ऋतम्मरा में मौन हो जाता है और प्रज्ञा में बेटा देखो वह परमात्मा का दर्शन करता है।** तो मेरे प्यारे! देखो यह बुद्धियों का निर्माण भी मानो देखो इसी प्रकार मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार चित्त–अहंकार मानो देखो यह चित्त–अहंकार की प्रतिया भी मानो देखो उस आपो से उत्पन्न होती है। हमें उसकी आभा में रत्त होना चाहिए। तो विचार–वेता कहते है कि वे ब्रह्मणा कृतम देवत्वाम्, हे माता तू अपने में महान है। जब तू प्राण को अपान में मिलान करती है और अपान को व्यान में और व्यान को समान में समान को उदान में तो वह अपने गर्भस्थल के अन्तः शिशु से देखो तू उससे वार्ता प्रगट करने लगती है। तो आओ मेरे प्यारे! मैं इस विज्ञान में जाना नही चाहता हूँ केवल यह क्या मुनिवरो! देखो यह आपो हमारा जीवन है और आपो ही मानो देखो अञ्जलि में ले करके जल को उससे कहो प्राणाय स्वाहाः क्योंकि **प्राण ही तो भक्षक करता है** और प्राण से ही मुनिवरो देखो उस महान आपो से ही पिण्डो का निर्माण होता है।

पृथ्वी की रज द्वारा याग

तो मेरे प्यारे! देखो ब्रह्मणे जब यज्ञदत ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु! यह भी मैने जान लिया परन्तु कही ऐसे अवसर प्राप्त हो जाते है कि जल भी प्राप्त नहीं होता और याग की इच्छा होती है तो हम कैसे करे? तो मेरे पुत्रो देखो उन्होंने कहा कि तुम यदि यह प्राप्त न हो तो तुम पृथ्वी की रज को ले करके कहो प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा; कह करके हूत प्रारम्भ करो मानो देखो **वहीं तुम्हारा जीवन है वहीं तुम्हारे जीवन की प्रतिष्ठा कहलाती है** क्योंकि संसार में जब भी इस संसार में पिण्डो के निर्माण होते हैं–तो मेरे प्यारे! देखो तीन प्रकार के परमाणु होते है और वह देखो तेजोमयी, तरलत्व और देखो गुरुत्व यह देखो तीन प्रकार के परमाणुओ से वैज्ञानिक जन इन्हीं परमाणुओं से बेटा यन्त्रों का निर्माण करते है और इन्हीं परमाणुओं से मानो लोक लोकान्तरों के सब पिण्डो का निर्माण होता है। माता के गर्भस्थल में यह मानो पिण्ड का निर्माण होता है जिसमें बेटा देखो हृदय भी दो, एक लघु मस्तिष्क में हृदय होता और एक हृदय मुनिवरों देखो

एक शरीर के मध्य में होता है और मन, बुद्धि, चित, अहंकार पंच प्राण है और बुद्धियां है देखो **रेतस्तव** माना गया है। मेरे प्यारे। देखो पंच महाभूतो की रचना में विद्यमान होने वाला आत्मा जो क्रिया शील बना रहता है। तो विचार आता है यह जो पिण्ड है यह कौन निर्माण करता है? पिण्ड, मेरे प्यारे इन परमाणुओं से ही तो उनका निर्माण होता है, निर्माण करने वाला मेरा प्रभु है। इस मानव शरीर में बेटा! बहतर करोड़ बहतर लाख दस हजार दौ सौ दो नाड़ियों को निर्माण होता है उन निर्माण वाले ही मानो देखो यह पिण्ड कहलाता है। जो मानो देखो इन्हीं के द्वारा खेचरी वाणी उच्चारण करता है। कहीं मानो देखो ध्वनियों को श्रावण करता है कहीं मुनिवरो देखो अन्नाद को अपने में धारण करने लगता है। इसी को जान करके योगेश्वर बनता है, इसी को जान करके विज्ञानवेता बनता है। वैज्ञानिक जन बेटा! इन परमाणुओ को ले करके अपने यन्त्रों का निर्माण करते है, कहीं मानो देखो वह नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में गमन करने लगते है।

मुझे बेटा! वह काल स्मरण आता रहता है जब महर्षि तत्व–मुनि महाराज के यहां बेटा! ब्रह्मचारी अपने में अध्ययन करते रहे है और अध्ययन करते हुए मानो देखो नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करते हुए नाना लोक–लोकान्तरों में बेटा गतिवान होते रहे हैं। आज मैं विशेष चर्चा न प्रगट करता हुआ केवल यह महर्षि तत्व मुनि महाराज के यहां जब महर्षि भारद्वाज और भी नाना ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे तो बेटा! वह यन्त्रों में विद्यमान हो करके जब अपनी मानवीय यन्त्रम् ब्रह्मा उसमें प्रवेश करके और यन्त्रों में निर्माणित हो करके गमन करते तो बेटा! यहां से, पृथ्वी मण्डल से, ऋषि के आश्रम से मानो जब यन्त्र उड़ाने उड़ता है तो बेटा! वह मंगल में जाता। सबसे प्रथम चन्द्रमा में जाता है, चन्द्रमा से बुद्ध में जाता है, बुद्ध से शुक्र में जाता है, शुक्र से मंगल में जाता है, मंगल से मुनिवरो देखो रेत्वा मंडल में प्रवेश होता है, रेत्वा मंडल से उड़ान उड़ करके वह अरुन्धति में प्रवेश करता है, अरुन्धति से उड़ान उड़ता है तो वशिष्ट मंडल में जाता है और वशिष्ठ मण्डल से उड़ान उड़ता है तो व्रेतकेतु मंडल में प्रवेश कर जाता है और व्रेतकेतु मंडल से उड़ान उड़ करके वह स्वाति नक्षत्र में प्रवेश हो जाता है और स्वाति से उड़ान उड़ता है तो भेंतरी व्रेत मंडल में प्रवेश कर जाता है और भेंतरी मंडल से उड़ान उड़ता है तो मूल नक्षत्र में प्रवेश हो जाता है और मूल नक्षत्र के मानवीयत्व को दृष्टिपात करता हुआ बेटा! और–और भी नाना मण्डलों में प्रवेश करता हुआ, मूल यह कि बहत्तर लोको का भ्रमण करके वह भारद्वाज मुनि के आश्रम में बेटा वह शनै–शनै यान अपने में प्रवेश करता रहा है। तो आज मैं बेटा विज्ञान के युग में तुम्हे ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय क्या मुनिवरो देखो उच्चारण यह हो रहा था अमृतम यह पिण्ड का स्वामी कौन है? बेटा पिण्ड का निर्माण करने वाला यह आपो है, मानो गुरूत्व है और यही देखो तरलत्व यह तीन प्रकार के परमाणुओं का मिलान किया जाता है। मानो तेजोमयी, तरलत्व और गुरुत्व इन परमाणुओं के मिलान से ही नाना प्रकार के विज्ञान में मानव प्रवेश करता रहा है।

अब विचार–विनिमय क्या मेरे पुत्रो! देखो **भव, वर्णस्तम् ब्रह्मा लोकाम** वेद का महर्षि याज्ञवल्क्य कहता है हे ब्रह्मचारियों तुम इस प्रकार मानो देखो अपने में, अपनेपन में ही प्रतिष्ठित होते चले जाओ और तुम मानो देखो यह पिण्डो का आकार दृष्टिपात करो। तुम जब देखो पृथ्वी की रज को ले करके कहो प्राणाय स्वाहा, अपनाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा कह करके हूत प्रारम्भ करो मानो देखो इसी से पिण्ड बनते है। पिण्डो की चर्चा मैने बेटा! तुम्हे इसमें पूर्व काल में प्रकट की थी। नाना पृथ्वीयो का निर्माण होता है, उनके पिण्ड बनते है, सूर्य का पिण्ड बनता है, चन्द्रमा का पिण्ड बनता है, मेरे प्यारे! देखो ध्रुव और देखो नक्षत्रों का पिण्ड बन करके बेटा! यह ब्रह्माण्ड एक अनुपमता में दृष्टिपात होता रहा है। तो विचार विनिमय क्या मुनिवरों यह पिण्ड किनसे बनते है? यह तीन ही प्रकार के परमाणु है, तीन ही मानो गुण कहलाते है रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण और तीन ही ओ३म् की मात्रा है अ, उ और म् और तीन ही मेरे प्यारे देखो भू, भुव, स्वः लोक ये तीन ही मण्डल कहलाए जाते है। यह त्रैतवाद में देखो यह ब्रह्माण्ड अपने में गति कर रहा है। तीन ही पदार्थ है बेटा! आत्मा, परमात्मा, प्रकृति जिनके ऊपर यह जगत अपने में क्रियाशील हो रहा है। तो विचार विनिमय क्या बेटा मैं त्रैतवाद के ऊपर कोई वार्ता प्रगट करना

नहीं चाहता हूँ। केवल विचार–विनिमय यह मुनिवरो! यह जो संसार का पिण्ड बन रहा है यह गुरुत्व के कारण है पृथ्वी का पिण्ड है एक पृथ्वीया नहीं नाना पृथ्वीयों के पिण्ड बनते हैं। मानो देखो इन पिण्डों की माला बनी वह सूर्य धारण कर रहा है जैसा मैने आज वाक्यों की पुनरूक्तिया करना नहीं चाहता हूँ। तो विचार–विनिमय–वेद का ऋषि कहता है, याज्ञवल्क्य हे! ब्रह्मचारियों तुम मानो देखो इसको जल अमृतम ब्रह्मा तुम रज को ले करके अञ्जलि में कहों प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा क्योंकि यह प्राण ही तो इसका भक्षण कर जाते है और यह अपने में धारण कर लेते है।

मेरे प्यारे! देखो यज्ञदत ब्रह्मचारी ने कहां हे प्रभु! ये भी मैने आप का वाक स्वीकार कर लिया आपका ज्ञान बड़ा अनन्त है। हे प्रभु! मैं जानना यह चाहता हूँ क्या भगवन कहीं देखो ऐसा हो कि **पृथ्वी की रज भी हमें प्राप्त न हो और हम याग करना चाहते है तो प्रभु हम कैसे करे?** बेटा! देखो याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे ब्रह्मचारी! यदि तुम याग करना चाहते हो और पृथ्वी की रज भी तुम्हे न प्राप्त होती है तो तुम एकन्त स्थली में विद्यमान हो जाओ और वेद मन्त्रों का उदगीत होना चाहिए वेद मन्त्रों के साथ में कहों प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, **सम्भूति ब्रह्मा प्राणम्ब्रह्मा लोकाम् व्रजस्व प्रव्हा स्वाहा वर्णं' ब्रह्मे लोकाम् वासम ब्रह्वी दोऽगस्तम् देवस्वय दिव्याम भविते मंगलम वसी देवत्वाम स्वाहा।** इस प्रकार तुम वेद का उदगीत गाते रहो, वेद के मन्त्रों को उच्चारण करते रहो परन्तु स्वाहाः कहते रहो और एकन्त स्थलियों में बेटा! मन, मस्तिष्क को एकाग्र करते हुए तुम जब याग करोगे तो तुम मानो इस लोक को विजय कर जाओगे। इस संसार में तुम विजेता को प्राप्त हो जाओगे, तुम्हारी इन्द्रिया मानो देखो विजयी बन करके और तुम मानो देखो संसार के स्वामित्व को अपने में धारण करोगे। मेरे पुत्रो! देखो जब ऋषि ने इस प्रकार वर्णन किया तो याज्ञवल्क्य मुनि महाराज मंगलम ब्रह्मा देखो यह उच्चारण करके अपने में मौन होने लगे परन्तु यज्ञदत ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु! आप को धन्य है आप ने हमें मानो देखो याग में अन्तिम छोर में पहुंचा दिया है कि मौन रह करके हम वेद मन्त्रों का उदगीत गाते हुए, वेद मन्त्रों की धाराओं में रत्त रह करके हम अपने में मौन हो जाए और याग को हम कदापि न त्यागे क्योंकि याग वसु है। वेद का ऋषि कहता है याग वसु है। जब ही तो तुम संसार में बसोगे जब तुम याज्ञिक बनोगें और याग नहीं होगा, जीवन में सुन्दरता नहीं होगी, चरित्र नहीं होगा, मानवता नहीं होगी तो तुम बस नहीं सकोंगे इसलिए याग को वसु कहते है। तो मेरे प्यारे! मैं कई समय से वसु के ऊपर अपनी वार्ता प्रगट कर रहा हूँ आज मैं तुम्हें केवल यहीं वाक उच्चारण करने के लिए कि हमारा जीवन एक महानता में परणित होता रहे। महानता की वेदी पर हम सदैव रत्त रहे जिसमें हमारे जीवन की धाराए महान और पवित्रता की वेदी पर मानो देखो पवित्रम ब्रह्मा व्रतम् हम अपने में देखो विशाल बन करके, वैज्ञानिक बन करके अपने जीवन को अग्रणीय बनाए जिससे परमात्मा के राष्ट्र में परमात्मा के यज्ञरूपी संसार को हम जान सके मानो देखो उसे अपने में धारण कर सके। ऐसा बेटा! देखो ऋषि का आदेश ब्रह्मचारियों को प्राप्त होता रहा है। तो ब्रह्मचारी बेटा! देखो विद्यालय में जब आचार्य इस प्रकार के तपे हुए होते है तो मेरे प्यारे! देखो ब्रह्मचारी भी महान होते है और जब ब्रह्मचारी आचार्य दोनो महान होते है तो उससे समाज पवित्र बनता है और जब समाज पवित्र बनता है तो बेटा! राष्ट्र अपनी आभा में पवित्रत्व को प्राप्त हो जाता है। मेरे प्यारे! देखो जब राजा के राष्ट्र में देखो सबसे प्रथम विद्यालयों की प्रणाली पवित्र होनी चाहिए। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अपने वाक्यों में कहा है क्या हे ब्रह्मचारियों तुम आओ तपस्वी हो और तुम तपस्या में परणित हो जाओ; मानो आचार्य ब्रह्मचारी जब दोनों तपस्वी होते है। तपस्या का अभिप्रायः है उनका आहार पवित्र हो उनका व्यवहार पवित्र हो और उनकी शिक्षा प्रणाली मानो देखो एक दूसरे को बुद्धि वर्धक हो तो इस प्रकार का जब देखो प्रणालिया होती है वही प्रणाली मुनिवरो देखो राष्ट्र और देखो समाज को सजातीय बना देती है। तो आओ मेरे प्यारे! मैं आज तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ। आज का वाक् केवल हमारा यह क्या हमारे यहां प्रातः कालीन विद्यालयों में इस प्रकार की नैतिक शिक्षाएं होनी चाहिए। नैतिक शिक्षा हो तो मुनिवरो देखो विद्यालय पवित्रता की आभा में परणित हो जाएंगे। यह जब होंगे जब आचार्य तपे हुए होते है और तप करके मुनिवरो देखो उनके अर्न्तहृदय प्रत्येक इन्द्रियों से जब सुगन्धि आने लगती है अरे वही तो सुगन्धि रूपी

तरंगे बेटा! हृदय को पवित्र बनाती है और उसी से हृदय पवित्र हो करके बेटा! देखो समाज का वायुमण्डल पवित्र बन जाता है। तो आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा यह वाक समम्ब्रह्मे अब मेरे प्यारे महानन्द जी! दो शब्द उच्चारण करेंगे।

पूज्य महानन्द जी के उद्‌गार

ओ३म् देवम् भद्रा मनुः वाचन्नमः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल अभी–अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे मानो एक–एक आख्यिका में ऐसा हमें प्रतीत हो रहा था जैसे यह संसार इसी में निहित हो। परन्तु जब अग्रणीय वाक आया तो इसमें यह प्रतीत हुआ कि इसी में भी संसार है। तो विचार कि गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे। आज का हमारा वाक्, मैं इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ क्या यह हमारी जो आकाशवाणी हमारी जो वृत्तिया है यह मृत मण्डल में ऐसी स्थली में प्रवेश कर रही है जहां एक याग का वातावरण बना हुआ है और याग अपने में बहुत ऊर्ध्वा में क्रियाकलाप माना गया है। जिसके ऊपर ऋषि–मुनि परम्परागतो से इसके ऊपर अपनी विचारधारा प्रगट करते रहे है और ब्रह्माण्ड को और पिण्ड को, दोनों को एक सूत्र में ला करके और उन्होंने याग की कल्पनाएं की है। आज मेरा अन्तरात्मा इसलिए प्रसन्न युक्त क्या यह जो वर्तमान काल चल रहा है यह वाम्–मार्ग काल मैं इसको कहा करता हूँ। यहां सुरा और सुन्दरी और द्रव्य की लोलुपतता में मानव अपने जीवन को व्यतीत कर रहा है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव! से कोई ऐसा वाक नहीं उच्चारण करुँगा मेरे वाक कटुता में तो अवश्य होंगे परन्तु उससे पूर्व यहीं वाक क्या आधुनिक काल का जो समाज है वर्तमान का चाहे वह राष्ट्र–वेता हो, राजा हो, चाहे प्रजा हो परन्तु दोनों एक दूसरे के स्वार्थपरता में लगे हुए है। तो मैं इस वाक्यों को विशेषता नहीं केवल यह कि मैं आज, मैं अपने यज्ञमान को अपना सुविचार देने के लिए हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहें और तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे। जिस गृह में दृव्य का सदुपयोग होता है वह गृह स्वर्ग कहलाता है और जिस गृह में द्रव्य का दुरुपयोग होता है, सुरा और सुन्दरी में लगा रहता है वह द्रव्य मानव को नारकिक बना देता है इसीलिए द्रव्य का सदुपयोग होना चाहिए। उसमें देवतत्व होना चाहिए उस द्रव्य में राष्ट्रीयता होनी चाहिए।

राजा एवम् राष्ट्र

परन्तु राजा को ब्रह्मवेता होना चाहिए। राजा के राष्ट्र में भिन्न–भिन्न प्रकार की रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। हमारे यहां मैने बहुत पूर्व काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव! से वर्णन करते हुए कहा था कि रावण के राष्ट्र में भी नाना प्रकार की रूढ़ियाँ बन गई थी। ईश्वर के नाम पर जब समाज में रूढ़ि बन जाती है तो वह समाज आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट हो जाएगा। राष्ट्रीय पद्धति भ्रष्ट हो जाती है और जब राजा के राष्ट्र में एकोकी विचार होते है, एकोकी महानता परमात्मा के प्रति होती है तो उस राजा के राष्ट्र में एकता का सूत्र मानो देखो जैसे धागे में नाना मनके पिरो करके और वह माला बन जाती है इसी प्रकार माला के सदृश समाज बन जाता है। तो विचार आता रहता है मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा न देता हुआ केवल अपने पूज्यपाद गुरुदेव! को अवगत करा रहा हूँ क्या रावण के राष्ट्र में राक्षस एक सम्प्रदा थी जो राजा रावण ने जिस सम्प्रदा को अपनाया। देवी सम्प्रदाय को अपनाने वाले देव्यव्रहा व्राहतकेतु वर्णम्ब्रह्मा देखो वह राजा रावण के पुत्र मेघनाथ जी का मत कुछ और था, उनकी सम्प्रदाय कुछ और थी। परन्तु इन सम्प्रदायों में जब अशान्ति हो गई एक दूसरे के विचारों में विभिन्नता, देखो राम मत को मानने वाला विभीक्षण उनका विधाता था और इसी प्रकार नाना प्रकार के सम्प्रदायों का जब जन्म हो गया तो उस समय राष्ट्र का विनाश हो गया। मानो देखों राष्ट्र अग्नि के काण्ड बन करके नष्ट हो गया। इसी प्रकार यह जो वर्तमान का काल है इसमें भी नाना प्रकार के सम्प्रदाय है और उन सम्प्रदायों में बड़ी त्रुटिया है। सिद्धान्त रूप में उन सैद्धान्तिक रूपों से राजा को चाहिए कि राजा वेद का देखो क्या, ब्रह्मज्ञान का अध्ययनी हो और ब्रह्मज्ञानी हो। राजा की मध्यस्थता में देखो सब सम्प्रदायों के आचार्यों को एकत्रित किया जाए और एकत्रित करके उनका शास्त्रार्थ होना चाहिए, विचार–विनिमय होना चाहिए। राजा की मध्यस्थता में, ब्रह्मवेत्ताओ की मध्यस्थता में जब इस प्रकार का विचार–विनिमय होता है तो मानो देखो राष्ट्र को जो धर्म विज्ञान

और मानवीयता का जो विचार स्थिर हो जाए उसको अपनाना राष्ट्र का कर्तव्य है। जो वैज्ञानिक दृष्टि से और देखो जो ब्रह्म ज्ञान की दृष्टि से सिद्ध हो जाए उसको अपनाना राजा का कर्तव्य है और वह राजा जो इस प्रकार का अपनाने वाला बनता है तो नाना प्रकार के जो ईवश्र के नाम पर नाना सम्प्रदाय है वह समाप्त हो जाते है और जब तक यह समाप्त नहीं होते एक दूसरे के विचार नहीं मिल पाते। जब विचारों में साम्यता नहीं आयेगी तो मानो देखो विचारों में रक्त भरी क्रान्ति अवश्य आयेगी। तो रक्त भरी क्रान्ति जब आती है एक दूसरा प्राणी, प्राणी को नष्ट करने के लिए तत्पर हो जाता है। प्राणी–प्राणी देखो उग्रवाद को धारण कर लेता है और धारण क्यों करता है क्योंकि ईश्वर के नाम का उसे ज्ञान नहीं रहा। धर्म और मानो मन मस्तिष्क मानो देखों उसका पवित्र न रहने से मानो देखो वह द्रव्य की लोलुपता में रत्त हो गया।

ब्रह्महत्या

जब राजा के राष्ट्र में ऐसी शिक्षा दी जाती है क्या परमात्मा तो मानो सर्वत्र विद्यमान है परमात्मा एक महानता में रत्त रहता है। वह विज्ञान का स्वामी है, वह ज्ञान का स्वामी है। अन्तरात्मा में जब भावना आती है प्रत्येक मानव कहता है अरे मानव तू ब्रह्महत्या न कर, ब्रह्महत्या कौन करता है? मानव देखो **ब्रह्मण ब्रह्मा क्रतम देवा जो बुद्धिमान आत्मा की मानो देखो त्रास करता है वह ब्रह्म हत्या है और जो अपनी अन्तरात्मा देखो आत्मा ब्रह्मे वाणी आत्मा की प्रेरणा को जो नष्ट करता है वह भी ब्रह्महत्या कर रहा है।** यहां ब्रह्महत्या नहीं होनी चाहिए जब ब्रह्म हत्या होती है तो राष्ट्र का राष्ट्र के ऊपर दोषारोपण आता है और ब्रह्म हत्या क्या है? देखो अपनी अन्तरात्मा आत्मा को ब्रह्म कहते हैं। आत्मा की जो प्रेरणा है उसे जो नष्ट कर रहा है मानो देखो वह ब्रह्म हत्या कर रहा है मानो सुरापान कर रहा है परन्तु आत्मा उसे प्रेरणा देती है परन्तु वह प्रेरणा अम्ब्रहा वह बाहर जगत में अपने को ले जाता है परन्तु आत्मा की हत्या कर रहा है, ब्रह्म हत्या कर रहा है। अरे! ब्रह्म हत्या न होने दो यदि ब्रह्म हत्या हुई तो यह राष्ट्र और समाज मानो देखो एक समय आयेगा जब रक्त भरी क्रांति बन करके रह जायेगा। परन्तु देखो आत्माम भूतम ब्रह्मा देवत्वाम् वेद का वाक कहता है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! परम्परागतो से यह शिक्षा देते रहे है, क्या, आत्मा की प्रेरणा को स्वीकार करो और जो आत्म–प्रेरणा को स्वीकार करता है वहीं देखो ब्रह्म की रक्षा कर रहा है वही ब्रह्मवादी है और ब्रह्मवादी बन करके देखो अपने मानवीयत्व को ऊंचा बनाता है।

तो आज का विचार मैं विशेष न देता हुआ केवल यह कि देखो हमारे यहां यदि समाज को ऊंचा बनाना है तो राजा को जय होना होगा, प्रत्येक इन्द्रियों के ऊपर संयम होगा और ब्रह्मवेता बन करके राष्ट्र मानो देखों जब गमन करेगा तो देखो उसका राष्ट्र पवित्र बनेगा और जब राजा ब्रह्मवेता नहीं होगा और वह रूढ़िवादी बन जायेगा और देखो जब रूढ़ि उसके मस्तिष्क में सदैव तत्पर रहेगी और यहाँ नाना प्रकार के रूढ़ियों को देखो नष्ट नहीं करेगा तो वह राजा देखो राजा नहीं कहलायेगा। उस राजा का समाज आज नहीं तो कल अवश्य बिखर जायेगा, विचार बिखर जायेगें रक्तभरी क्रान्तियां आ जायेंगी। तो आज का हमारा केवल यह वाक है क्या मैं सदैव यह वाक अपने पूज्यपाद गुरुदेव! को अवगत कराता रहता हूँ क्योंकि पूज्यपाद गुरुदेव! जब किसी मानो देखो राष्ट्र में जाते थे तो राष्ट्र के अन्न को ग्रहण नहीं करते थे। क्योंकि राष्ट्र का अन्न मानो देखो किस–किस प्रकार का होता है बुद्धि समाप्त हो जाती है। राजा वह ब्रह्म वेत्ता बन सकता है जो अपने यहां स्वयं पुरुषार्थ करके जिस अन्न को पान करता है, राष्ट्र का क्रियाकलाप करता है वह राजा देखो अपने में ब्रह्मवेता बन सकता है। जो उसका अन्न ही पवित्र नहीं होगा तो आज तब इन्द्रियां कैसे पवित्र हो सकेंगी। जब महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में जाने का पूज्यपाद गुरुदेव! के द्वारा जाने का गर्भ सौभाग्य प्राप्त होता तो वह स्वयं देखो कृषि का उदगम् करते और वसुन्धरा के गर्भ से जो अन्न उत्पन्न होता उसको पान करते। कामधेनु गऊ के दुग्ध का आहार करते और राष्ट्र मे मानो देखो अपने में क्रियाकलाप करते थे। राष्ट्र प्रसन्न रहता, प्रजा प्रसन्न रहती परन्तु देखो जब ज्ञान ही नहीं है तो देखो अज्ञान की यहीं **अव्रता** देखो यह रक्त भरी क्रान्ति में समाज परिवर्तित होता जा रहा है। उसका मूल केवल यह ही मैं जान पाया हूँ कि नाना प्रकार की जो ईश्वर के नाम पर रूढ़िया है वह

रूढ़िया समाप्त होनी चाहिए। रूढ़ियों को समाप्त करके, सब, प्रत्येक राजा अपने में संगठित हो करके ब्रह्मवेता देखो अपना वह ब्रह्म का बखान करते हुए, ब्रह्म का उपदेश दे कर के निर्मोही बनते है। राजा का और मोह का कोई सम्बन्ध नहीं होता। मानो जैसे योगी का, मोह का, काम का कोई सम्बन्ध नहीं होता ऐसे राजा होने चाहिए। तो आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ अपने पूज्यपाद गुरुदेव! से मैं अवकाश पाऊंगा अब मानो देखो मेरा यही **आव्रतम् ब्रह्मा** यही विचार रहता है हे यज्ञमान! तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होना चाहिए और देखो जब प्रत्येक गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता है यह द्रव्य ही माता बन करके, यह लक्ष्मी बन करके तुम्हारे गृह को सजातीय बना देगी और यदि तुम देखो लक्ष्मी का दुरुपयोग करते रहोगे सुरा सुन्दरियो में लगाएं रहोगे तो एक समय आयेगा यह लक्ष्मी तुम्हें त्याग देगी! मानो देखो तुम अपने में देखो द्रव्य हीन बन करके और अपने में मानो कृतियों में रत्त हो जाओगे। तो अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव! से आज्ञा पाऊंगा और यज्ञम् भवसप्रे क्या यागाम ब्र्व्हे हे यज्ञमान। तुम्हारा जीवन महान बना रहे ऐसी मेरी कामना रहती है।

पूज्यपाद गुरुदेव

मेरे प्यारे! ऋषिवर अभी अभी मेरे प्यारे महानन्द जी! ने अपने बड़े भव्य विचार दिए है। इन विचारों में बड़ी सार्थकिता, ऊर्ध्वा में विचार जो परम्परागतो में जब यह उपदेश अयोध्या में या प्रत्येक राष्ट्रों में प्रायः होते रहे है इस प्रकार का इन्होंने आज विचार दिया। अब इसके साथ ही हमारा यह विचार सम्पन्न होने जा रहा है। विचारों का अभिप्राय यह क्या **मानव को ब्रह्मवेता होना चाहिए** महानन्द जी के शब्दों में ब्रह्म हत्या नहीं होनी चाहिए और हमारे विचार केवल यहीं कि मानव अपने **विद्यालयों में अपने में नैतिकवाद होना चाहिए** और याग मानो देखो आध्यात्मिक और भौतिकवाद, दोनों मानो याग से मानव देखो जकड़े हुए रहते है दोनो उसके स्तम्भ माने गये है। तो आध्यात्मिक याग और भौतिक याग दोनों का समन्वय होना चाहिए जिससे मानव, मानव का सहायक बन करके इस संसार को माला के सदृश अपने में भोगने वाला हो ऐसा विचार! अब आज का वाक् समाप्त, अब वेदो का पठन–पाठन। अच्छा भगवन! दिनाँक : 4–2–1992 स्थान : खतौली

२. संध्या 20 अक्तूबर 1963

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! अभी–अभी हमारा (वेद) पर्ययण समय समाप्त हुआ। आज हम तुम्हारे समक्ष पुनः की भाँति कुछ वेद मन्त्रों का गान गा रहे थे। आज कैसा सुहावना समय है। जिस सुन्दर समय में परमपिता परमात्मा ने हमें इन वेद मन्त्रों के उच्चारण करने का सुअवसर दिया। आज इस अमृत बेला में उस गान को गायें जिससे हम देवता बन जाएँ। मुनिवरो ! देवताजन प्रातःकाल में कैसे अमृत को पान किया करते हैं।

आज आरम्भ के मन्त्र में ही **'प्रातरग्नि'** आ रहा था। हे प्रातःकाल की अग्नि ! तू हवि है। तू हव्य पदार्थों को उत्पन्न करने वाली है। तू हमें हव्य पदार्थों का पान करा जिससे हम देवता बन जाएं और देवता–गणों के समाज में विराजमान होकर देव वाणियों को कुछ विचारें। हमारी विचारधाराएँ हर स्थान में देववृत्ति ही बनी रहें।

देव प्रवृत्ति

प्रायः मानव कहते हैं, मेरे प्यारे महानन्द जी भी कहा करते हैं कि **देवता** जन कौन से वाक्यों को विचारा करते हैं ? मुनिवरो ! **वह हर समय दूसरों के कल्याण के लिए ही विचारा करते हैं। वह हर समय दूसरों को कुछ देते हैं। वे अपनी त्रुटियों को देखकर दूसरों के गुणों को धारण करते हैं।** संसार में दूसरों के कल्याण की भावना जिनके हृदय में रहती है, वे देवता कहलाते हैं। वे दूसरों की निन्दा नहीं करते। जो दूसरों की निन्दा करते हैं, उन्हें देवता नहीं कहते। **आत्मा की व्याहृतियों को जानने वाले को देवता कहते हैं।**

मुनिवरो ! आज हमें यह प्रातःकाल का ऊँचा समय बहुत समय के पश्चात् मिला। आज इस ऊँचे समय में कुछ सन्ध्या का प्रश्न करते चले जायें। इस प्रातःकाल में प्रभु का गुणगान गाएँ। हे परमात्मन् ! तू कल्याण करने वाला है। तूने हमारे कल्याण के लिए नाना सामग्री उत्पन्न की है। हे प्रभु ! हम आपसे कल्याण चाहते हैं।

हे इन्द्र ! इस संसार को नियम से बनाने वाले ! हमारे जीवन को भी नियमित बना। जब हमारा जीवन नियमित होगा तो हम तब ही कुछ कार्य कर सकेंगे। आपने प्रातःकाल में सूर्य को उत्पन्न किया है इसी प्रकार हे देव ! हम उस महान ज्योति को चाहते हैं जिससे हमारा आत्मिक कल्याण हो। वह कौन–सी ज्योति है ?

मुनिवरो ! वह ज्योति हमारी सन्ध्या की व्याहृतियाँ हैं। जब सन्ध्या की व्याहृतियों को जाना जाता है तो वह सन्ध्या वास्तव में हमारा कल्याण कर देती है। जब देवता सन्ध्या के द्वार पर जाते हैं तो सन्ध्या पुकार कर कहती है कि हे देवताओ! तुम यदि मेरा आदर करोगे, अनुकरण करोगे तो तुम संसार में देवता बन जाओगे यदि तुम मुझे ठुकराओगे तो तुम संसार में ठुकराए जाओगे।

मुनिवरो ! कहते हैं कि एक समय ब्रह्मा भी देवताओं के द्वार पहुँचे। ब्रह्मा के चरणों को स्पर्श करते हुए देवताओं ने कहा कि भगवन ! हमारे कल्याण के लिए कोई मार्ग निर्णय कीजिए। उस समय ब्रह्मा जी बोले, ''अरे देवताओ ! आज तुम कौन से वाक्य से देवता बने हो, इसका मुझे कुछ प्रकाश दो।''

उस समय देवताओं ने कहा, **''हे भगवन ! हम किसी का आदर करके और अनुकरण करके देवता बने हैं।''**

तब ब्रह्मा ने कहा, ''तुम किसका आदर करते हो?''

उन्होंने कहा कि हम तो संध्या का आदर करते हैं। हम दुर्गा का आदर करते हैं।

उस समय ब्रह्मा जी बोले, ''ओ देवताओ ! तुम कल्याण का और क्या मार्ग चाहते हो।''

मुनिवरो देखो ! उस समय देवताओं ने कहा, ''प्रभु हमें आपके मुखारविन्द की भी तो आवश्यकता है। जो आप अपने मुखारविन्द से कहेंगे वह हमारे लिए अमृत बन जाएगा।''

सन्ध्या की उत्पत्ति

कहते हैं मुनिवरो ! उस समय **ब्रह्मा जी ने अपने मुख से इस सन्ध्या को उत्पन्न किया** और कहा कि हे देवताओ ! यह जो सन्ध्या मैंने तुम्हारे लिए उत्पन्न की है इसका अनुकरण करो। यह सन्ध्या तुम्हें और भी देवता बना देगी। आज तुम दूसरों का आदर करके तो देवता बने हो परन्तु इस सन्ध्या को जो मेरे मुखारविन्द से उत्पन्न हुई है इसका अनुकरण करो।

तो मुनिवरो ! कहते हैं कि सन्ध्या ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुई, जिसके अनुकरण से ऋषि बन जाते हैं। जिससे देवता बन जाते हैं। मेरी माताएं दुर्गा बन जाती हैं, माँ काली बन जाती हैं। जिससे अपने जीवन को ऊँचा बना लेते हैं। आज हमें सन्ध्या की गोद में जाना है।

आज मानव कहते हैं कि ब्रह्मा ने इसे कैसे उत्पन्न किया? जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है तो उससे पूर्व आत्मा उस प्रभु से अनुरोध करता है कि प्रभु कर्म करने के लिए सृष्टि उत्पन्न करो। सृष्टि उत्पन्न होने के पश्चात् मुनिवरो ! ऐसा कहते हैं कि देवताओं ने यह याचना की कि विधाता ! यह हमारे कर्म करने का क्षेत्र तो बनाया परन्तु हमें देवता बनने का और भी कुछ प्रयत्न कीजिए। कहते हैं मुनिवरो ! ब्रह्मा ने अपने मुखारविन्द से सन्ध्या को उत्पन्न किया। मुनिवरो ! देखो सन्ध्या प्रकाश देती आई है और संसार को और भी प्रकाशमान बना दिया। जैसे मुनिवरो ! आज सूक्ष्म–सा प्रकाश हो रहा है और यदि सूर्य का प्रकाश आ जाए तो यह प्रकाश शान्त हो जाता है। वह प्रकाश फीका पड़ जाता है। इसी प्रकार विधाता ने यह सूक्ष्म–सा प्रकाश तो संसार को दिया परन्तु एक सूर्य जैसा प्रकाश सन्ध्या का आया। सन्ध्या के आते ही सबने उसको अपने में धारण करना प्रारम्भ कर

दिया। उसका अनुकरण किया। तो कहते हैं बेटा ! वहाँ और भी प्रकाश हो गया संसार में। आत्मा के द्वारा जो मल, विक्षेप, आवरण थे वह भी सब शान्त होने लगे। वह इस प्रकार शान्त हो गए जैसे सूर्य उदय होने पर रात्रि की प्रभा शान्त हो जाती है। इसी प्रकार मुनिवरो ! सन्ध्या के अनुकरण से मनुष्य का हृदय निर्मल और स्वच्छ बन जाता है। जिस मनुष्य का हृदय निर्मल और स्वच्छ बन गया। उसका वास्तव में कल्याण हो गया।

दुर्गा

तो मुनिवरो ! आज हमें अपना कल्याण करना है और विचारना है कि कल्याण के लिए सबसे मुख्य वार्ता क्या है ? मेरे प्यारे महानन्द जी ने निर्णय कराया कि इस समय संसार में प्रत्येक स्थान में माँ दुर्गा का पूजन हो रहा है। माँ दुर्गा क्या है ? माँ दुर्गा भी वह सन्ध्या है।

माँ दुर्गा तू वास्तव में कल्याण करने वाली है। आज के वेद–पाठ में कई स्थानों में माँ दुर्गा का प्रकरण आ रहा था। हे माता दुर्गे ! तुझे अष्ट भुजाओं वाली कहा जाता है। तू वास्तव में अष्ट भुजाओं वाली है। जब तू आठ भुजाओं को लेकर संसार में आती है तो यह संसार प्रकाशमान हो जाता है। सिंह तेरा वाहन है। तू सिंह रूपी वाहन पर सवार होकर आ, और आ करके दैत्यों को शान्त कर और देवताओं की रक्षा कर। माता दुर्गे ! तू वास्तव में कल्याण करने वाली है। तू वास्तव में हमारे जीवन को, हमारे हृदय को उदार बनाने वाली है। मल, विक्षेप, आवरण को शान्त करने वाली है और आत्मा को निर्मल और स्वच्छ बना देती है।

मुनिवरो देखो ! **अष्ट भुजाओं वाली दुर्गा कौन है ?** जिसके अष्ट भुजाएं हैं। **दुर्गा नाम है बेटा विद्या का।**

मुनिवरो देखो ! विद्या किसी के आधार पर आती है। विद्या का जो वाहन है वह भी विचित्र है। वह कौन है ? वह देखो सिंहनाद है जिसके आधार से विद्या आती है। यह अष्ट भुजाओं वाली विद्या, अष्ट भुजाओं वाली दुर्गा कौन है ?

मुनिवरो देखो ! जब मनुष्य ज्ञान के मार्ग में जाता है तो विद्या को पान करने वाला बन जाता है। उस समय यह दुर्गा, यह विद्या इस सब ब्रह्माण्ड का जिसमें **आठ दिशायें हैं** उनका ज्ञान करा देती है। उसके ज्ञान और विज्ञान को जान जाता है कि पूर्व में क्या है? पश्चिम में क्या है? उत्तरायण में क्या है ? दक्षिणायन में क्या है? उन दोनों के माध्यम में क्या है? आठों दिशाओं को जानने वाला जिज्ञासु मुनिवरो देखो ! दुर्गा का अनुकरण करता है।

दुर्गा माता की पूजा कैसे की जाती है?

दुर्गा माता की पूजा मनुष्य उस काल में कर सकता है जब उसके द्वारा ज्ञान होता है, विद्या होती है, सिंहनाद होता है। सिंहनाद कौन–सा है?

मुनिवरो देखो ! जिससे अपराधियों को कुचला जाता है। अज्ञान रूपी पशुओं को शान्त किया जाता है। हृदय निर्मल और स्वच्छ बन जाता है। तो मुनिवरो ! **माँ दुर्गे भी सन्ध्या है।**

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे एक वार्ता प्रकट की कि **गंगा में एक प्रवाह आता है** और उस पर्व में जो गंगा की अमृतधारा को पान करता है वह वास्तव में अमर हो जाता है। वह निर्मल और स्वच्छ बन जाता है। वह देवता बन जाता है। वह उस गंगा की दुग्ध तुल्य धारा को पान करके संसार से पार हो जाता है।

वह कौन से पर्व का स्थान है जिसके करने से मानव का कल्याण होता है। जिस पर्व में स्नान करने से आत्मा के मल, विक्षेप, आवरण शान्त हो जाते है। वह कौन–सा निर्मल स्वच्छ जल है?

मुनिवरो ! आज हम विचारते नहीं। प्रातःकाल के पर्व में हमारा हृदय निर्मल और स्वच्छ कैसे बन सकता है ? प्रातःकाल की गंगा में स्नान से बन सकता है। माता दुर्गा (विद्या) की पूजा से बन सकता है। आज उस सन्ध्या के अनुसरण करने से बन सकता है।

गंगा की कौन–सी धारा है जिसे पर्व कहते हैं। मेरे महानन्द जी ने कहा कि **पूर्णिमा** का एक अलौकिक समय आता है जिस समय गंगा में एक महत्ता आती है। जिस पर्व के स्नान से मानव निर्मल बन जाता है।

मुनिवरो! वह गंगा हमारे शरीर में रमण करती चली जा रही है। वह वेग से बहती चली जा रही है। मुनिवरो! वह है हमारी सन्ध्या। जिसमें ज्ञान का प्रकरण आता है और जिसके स्नान से हमारा हृदय निर्मल और स्वच्छ बन जाता है। मुनिवरो! जो प्रातःकाल में सन्ध्या का अनुकरण करते हैं और एकान्त स्थान में विराजमान हो करके सन्ध्या का पान करते हैं और सन्ध्या में कहते हैं, **'प्रातरग्नि'**! मुनिवरो! जब **'प्रातरग्नि'** का पाठ आता है तो कहते हैं हे विधाता! हमारी रक्षा करो। आज अपनी रक्षा चाहते हैं। यह जीवन आपका है। यह शरीर आपका है। यह संसार आपका है। मुनिवरो! मनुष्य सब ही कुछ देखो परमात्मा के अर्पण कर देता है। उस समय मनुष्य का हृदय निर्मल और स्वच्छ हो जाता है। आत्मा के द्वारा जो मल, विक्षेप, आवरण हमारे पाप कर्मों द्वारा, दुष्ट कर्मों द्वारा आ जाते हैं वह उस प्रकाश से सब शान्त हो जाते हैं।

मुनिवरो! जैसे एक वस्त्र है और उसमें बड़े ही दोष हैं। परन्तु जब वह जल के समीप जाता है तो जल उसे निर्मल और स्वच्छ बना देता है। इसी प्रकार हमें भी अपनी आत्मा के द्वारा जो मल, विक्षेप, आवरण हैं उनको शान्त करने के लिए हमें सबसे पूर्व माता सन्ध्या का पूजन करना है। उसके पाठ को करना है। **''ऋृतञ्च, सत्यञ्च''** का पाठ करना है जिससे वास्तविक कल्याण हो जाएगा।

आज सबसे पूर्व अपने को बनाना है। मैंने आज से पूर्व काल में कहा था कि देखो जब मनुष्य **'शन्नो देवी'** का पाठ करता है तो कहता है 'हे देवी तू कल्याण करने वाली है। तू हमारे कंठ में आ समा। जैसे जल हमारी तृषा को शान्तकर देता है उसी तरह हमारा कंठ उस जल रूपी तृषा का इच्छुक न रहे। हे शन्नो ! हमारा कंठ तो उस आनन्द का इच्छुक है। जैसे जल शीतल बना देता है उसी प्रकार हे शन्नो! तू आ और हमारे कंठ में विराजमान हो। हे माता! हमारा कंठ मधुर बने। सुन्दर बने। जिससे हे माता ! हमारे कंठ में जो वार्त्ता होगी यथार्थ होगी। अन्तःकरण तक जाएगी। हमारे द्वारा जो विक्षेप आवरण है, हे ''शन्नो देवी तेरे से शान्त हो जाएंगे। जैसे जल से तृषा शान्त हो जाती है उसी प्रकार ज्ञान से हमारे मल, विक्षेप, आवरण शान्त हो जाएंगे। जब ज्ञान का प्रकाश हो जाएगा तो अंधकार कहाँ रहेगा। जैसे रात्रि को शान्त करने वाला सूर्य प्रातःकाल में आता है और रात्रि का नाश कर देता है इसी प्रकार, हे शन्नो देवी! तू वाणी में विराजमान हो जाएगी और वाणी का प्रभाव अन्तःकरण तक जाने के पश्चात् मल विक्षेप आवरण जो हमारे पापों से बन चुके हैं वह सब शान्त हो जाएंगे। हे माता ! हम तुझसे अनुरोध करते चले जा रहे हैं। संध्या में सबसे पूर्व मुनिवरो! अपने को बनाना है।

अहा! **सन्ध्या की तीन व्याहृतियाँ होती हैं।** एक मुनिवरो देखो ! अपने को बनाना है कि मैं कौन हूँ और मैं कैसे बनूँ। मेरा हृदय कैसा बने, मेरे चक्षुः, मेरे श्रोत्र, मेरी घ्राण कैसी बने ? मेरी त्वचा यह सब ही कुछ कैसे बने। अपने को परमात्मा के समर्पण कर दो। प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को जानो। पहली व्याहृति यह है। द्वितीय व्याहृति वह है कि हम परमात्मा की सृष्टि का प्रकरण लेते हैं। हम परमात्मा का गुणगान गान गाते हैं। हे परमात्मा ! अब हम आपके पात्र हुए हैं। मैंने आज से पूर्व काल में कहा है कि परमात्मा के गुणगान गाने के लिए तुम पात्र बनो। जैसे मैंने यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में भी कहा था कि यज्ञोपवीत लेने से पूर्व तुम पात्र बनो। उसके पश्चात् तुम किसी की याचना कर सकोगे।

आज मुनिवरो ! जैसे किसी द्रव्यपति के द्वारा कोई सेवक है और किसी काल में अपने स्वामी से कहता है कि मेरा जो वेतन है वह मुझे दो। मुनिवरो ! वह वेतन किस काल में प्राप्त करता है ? वह उसी काल में करता है जब वह पात्र बनता है। इसी प्रकार मुनिवरो ! हमें सबसे पूर्व अपने को बनाना है और अपने को जानना है। जब हम अपने को जान जाएंगे तो उसके पश्चात् हम परमात्मा के गुण गाने योग्य होंगे, प्रभु का गुणगान गाएंगे। एक समय वह आएगा कि प्रभु हमारा रक्षक बन जाएगा। मुनिवरो ! जब प्रभु हमारा रक्षक बन जाता है तो उस काल

में वह हिंसक प्राणियों से जो हमें कष्ट देने वाले हैं उनसे हमारी रक्षा करता है, उन्हें कुचल देता है और हर प्रकार से हमारी रक्षा करता है। तो मुनिवरो ! आज सबसे पूर्व हमें पात्र बनना है और सब कुछ परमात्मा के अर्पण कर देना है।

मुनिवरो ! जैसा अभी–अभी व्याख्यान कर रहे थे कि संध्या में सबसे पूर्व **'शन्नो देवी'** आता है ! हे 'शन्नो'। तू देवी है तू हमारे **कंठ** में विराजमान हो। मुनिवरो ! वह शन्नो हमारे कंठ में विराजमान हो जाती है। इसके पश्चात् आता है। **चक्षुः चक्षुः।** आगे प्रत्येक इन्द्रिय के लिए प्रभु से याचना करते हैं कि हे प्रभु तू हमारे चक्षुओं को पवित्र बना और कैसा बना कि हमारे द्वारा पाप दृष्टि न हो। यदि हमारे चक्षुओं में पापाचार की दृष्टि आ गई तो वास्तव में हम पापी बन जाएंगे और एक समय वह आएगा कि वह पाप दृष्टि हमारा मूल बन करके हमारा विनाश कर देगी।

हे विधाता ! हमारे जो **श्रोत्र** हैं यह आपकी वार्ता को स्वीकार करते रहें। दूसरों की निन्दा को स्वीकार न करें। ये आज गुणों को धारण करने वाले बनें। दूसरों के गुणों की वार्ताओं को श्रवण करें। इसी प्रकार मुनिवरो ! हमारे जो **हस्त** हैं यह आपके अर्पण हैं विधाता ! इन्हें पवित्र करो। भुजा हमारे पवित्र हों। 'यशोबलम्' पवित्र हो। यह कैसे पवित्र बनेंगे ? जब प्रभु का गुणगान गाएंगे और इन सबको प्रभु के अर्पण कर देंगे। हम श्रद्धालु बन करके उस प्रभु का अनुकरण करते हैं तो वास्तव में हमारे भुजा विधाता से कहा करते हैं कि हे विधाता ! यशोबलम्। यह किसी प्रकार भी ऐसा कार्य न करें कि किसी निरपराधी को दण्ड दें। यदि निरपराधी को दण्ड देंगे तो विधाता हमारा विनाश हो जाएगा। द्वितीय आकर हमारे पर आक्रमण करेगा। आज हम यह चाहते हैं कि हमारे भुजा पवित्र कार्य करें। आज जब हम निरपराधी की रक्षा करेंगे तो वास्तव में कल्याण होगा। हे देव ! कल्याण के करने हारे! तू आ और हे भगवन् ! हम तेरे अर्पण हैं।

मुनिवरो देखो ! इसके पश्चात् आगे चलकर यह **पद** अशुद्ध मार्ग पर न चलें। यह उस मार्ग में चले जहाँ ऋषि महर्षियों का सत्संग हो रहा हो। यह उस मार्ग को चलें जहाँ प्रभु! आपका गुणगान गाया जा रहा हो। जहाँ दुराचारियों का गुण–गान गाया जा रहा हो उस मार्ग को न चलें, वह मार्ग मानव के कल्याण के लिए नहीं है।

आगे सन्ध्या की व्याहृतियाँ क्या कह रही हैं बेटा! **अंग हमारे पवित्र हों। हृदय उदार हो, पवित्र हो।**

इसी प्रकार मुनिवरो ! आगे चलकर **प्राणायाम** क्रिया करके **मार्जन** किया करते हैं। प्राणायाम से कहते हैं भूः, भूवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम,। हे विधाता! प्राणायाम करें, समाधि में लय हो जायें जिससे हम इन भूः, भूवः, स्वः, महः, जनः, तपः लोक लोकान्तरों में पहुंच सकते हैं। विधाता ! हमारे द्वारा और कोई साधन नहीं जिससे हम इन लोक लोकान्तरों को जान सकेंगे हम आपकी महिमा को देख सकें। यह है मुनिवरो ! सबसे पूर्व अपने को बनाना।

मुनिवरो ! उसके पश्चात् आता है **''ऋृतञ्च, सत्यञ्च''**। हे विधाता! तू वास्तव में सत्यंच है। तू वास्तव में सत्य है, पवित्र है। हे विधाता ! अब हम तेरे आंगन में आने योग्य हो गए हैं। अब हम पवित्र बन गये हैं। हमने सब ही कुछ आपके अर्पण कर दिया है। उस समय प्रभु का गुण–गान गाते हैं।

प्रभु का गुण–गान गाने के पश्चात् प्रभु को रक्षक बनाते हैं। प्रभु हमें हिंसक प्राणियों से बचाओ। उनसे हमारी रक्षा करो। एक समय वह आता है जब परमात्मा रक्षक बन जाता है और हमारा कल्याण करने लगता है।

मुनिवरो ! प्रभु मानव का कल्याण किस काल में करता है? जब हम प्रभु के आंगन में जाने योग्य हो जाते हैं। जैसे मुनिवरो! माता अपने प्यारे पुत्रों को लोरियों का पान किस काल में कराती है ? जब प्यारे पुत्र व्याकुल हो जाते हैं और माता की याचना करते हैं। तब वह माता अपने पुत्र के भाव को जान लेती है कि मेरा पुत्र क्षुधा से व्याकुल है। जिसे अपनी लोरियों में लगाकर आनन्दित करा देती है। इसी प्रकार मुनिवरो! वह परमात्मा हमारी

रक्षा किस काल में करता है जब हम व्याकुल हो जाते हैं और व्याकुल हो करके वैराग्य हो जाता है, केवल उस परमात्मा का ध्यान रहता है, उस काल, में परमात्मा हमारा रक्षक बन करके हमारा कल्याण करता है।

मुनिवरो ! यह है ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुई सन्ध्या। ब्रह्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में मानव कल्याण के लिए सन्ध्या को उत्पन्न किया है। यह मानव के कल्याण करने वाली वह सन्ध्या है जिसका सब ही देवताओं ने अनुकरण किया है। हे सन्ध्या, तू वास्तव में अमृत को पान कराने वाली है। तेरे से देवता अमृत पान करते हैं। यह वह सन्ध्या है जिससे ऋषि बन जाते हैं, जिससे देवता बन जाते हैं, विष्णु बन जाते हैं, शिव बन जाते हैं। यह वह सन्ध्या है जिसके प्रभाव से मानव राम और भगवान कृष्ण जैसा हो जाता है। यह वह सन्ध्या है, जिसका गुणगान गा करके संसार में कल्याण की भावनाएँ आती हैं।

मेरे प्यारे! महानन्द जी ने एक समय निर्णय कराया और आधुनिक काल का एक आदेश दिया और कहा कि सन्ध्या का पाठ प्रारम्भ है। परन्तु यह जो मनीराम है यह और ही कहीं भ्रमण कर रहा है। (हास्य) यह कहीं द्रव्यों में भ्रमण कर रहा है तो कहीं पापाचारों में भ्रमण कर रहा है। हमने जो पूर्व पाप किए हुए हैं वह समक्ष आ जाते हैं और वह मनीराम उनमें लग जाता है।

मुनिवरो ! मैंने अब से पूर्व अभी–अभी कहा है और पूर्व भी कह चुका हूँ कि इसके लिए सबसे पूर्व अभ्यास करते–करते अपने श्रोत्रों को प्रभु को अर्पण कर देना है। जब यह प्रभु में अर्पण हो जाएंगे और तुम प्रभु को अर्पण करोगे तो यह जो तुम्हारा मनीराम है यह शनैः–शनैः प्रभु के अर्पण किया जायेगा, प्राणायाम से अर्पण किया जायेगा। उस समय हे मानव ! तुम प्रभु के आंगन में जाने योग्य हो जाओगे और प्रभु तुम्हारा कल्याण करेंगे। यह मन कहीं भ्रमण नहीं करेगा। मैंने आज से पूर्व काल में कहा है कि विकल्पों को त्याग दो और संकल्पों को धारण कर लो इससे मन का विच्छेद हो जायेगा। यह मन एक संकल्प में लग करके तुम्हारा कल्याण कर देगा।

यह है मुनिवरो ! आज का हमारा आदेश जो प्रारम्भ हो रहा था। उच्चारण करते–करते बहुत दूर चले गये। उच्चारण कर रहे थे कि हे विद्या! तू हमारा कल्याण करने वाली है। माता ! जब यह संसार तेरे आंगन में आ जाता है तो संसार का उत्थान हो जाता है। राजा यदि तेरा अनुकरण करता है तो राजा महान बन जाता है। मेरी माताएँ तुझे कंठ में धारण कर लेती हैं तो उनके गर्भ में वह बालक उत्पन्न होते हैं जो देवता बन जाते हैं। आज तेरा अनुकरण करने वाले देवता बन जाते हैं। आज तू सबको देवता बनाने वाली है।

मैंने परमपिता–परमात्मा की कृपा से उस समय को देखा है जिस समय मेरी प्यारी माताओं का अन्तःकरण पुकार कर कहता था, मानव का अन्तःकरण पुकार कर कहता था कि हम संसार में अपने भोगों को भोगने के लिए आये हैं। हमें ऐसा कार्य नहीं करना कि भोग ही भोग लें। आज वह कर्म नहीं करना है संसार में।

मुनिवरो ! वह कौन–सा भोग है संसार में जो हमें भोग लेता है?

मुनिवरो ! हमारे आचार्यों ने पूर्व काल में एक पति और पत्नी का सम्बन्ध कहा है। इसका अभिप्राय है जैसे परमात्मा ने सृष्टि को उत्पन्न किया है कि मानव कर्म करे। यह उत्पन्न करने वाली सृष्टि है। इसी प्रकार मेरी प्यारी माताओं का, मेरे प्यारे भद्र पुरुषों का ब्राह्मणों द्वारा संस्कार हुआ है। आचार्यों के द्वारा प्रतिज्ञा ली है भोग भोगने के लिए परन्तु ऐसी नहीं कि भोग उल्टे हमें भोग लें। मुनिवरो ! आज हमें भोग भोगना है संसार में। **आज संयम को ग्रहण करना है।** आज हमें पुत्र उत्पन्न करने के लिए शय्या को ग्रहण करना है। महात्मा दधीचि को, अश्विनी कुमारों को, नारद जैसे आचार्यों को उत्पन्न करना है। मेरी माताओं को राजा उत्पन्न करना है तो हरिश्चन्द्र को, राजा दलीप को, महाराजा राम जैसे राजाओं को उत्पन्न करना है। मुनिवरो वे कैसे होंगे ?

आज वे भोगों को भोगने से नहीं होंगे। वह हमारे कर्म करने से होंगे। गर्भ स्थापन हो जाये, पति–पत्नी उस प्रभु की याचना करें, उन पुत्रों को अपने में धारण करें जिससे हे माता, तेरे गर्भ स्थल में रहने वाले बालक के

अंग प्रत्यंग में तेरी भावनाएँ समा करके वह महान दानी व पवित्र बने। वह तेरे अन्तःकरण से उत्पन्न होने वाला बालक पवित्र बने।

मुनिवरो ! क्या करें? जैसा मेरे प्यारे! महानन्द जी ने एक समय निर्णय कराया कि आज का संसार तो कहता है कि परमात्मा ने संसार भोग भोगने के लिए उत्पन्न किया है। भोग भोगो, परन्तु आज का संसार इतना चिन्तित हो गया है कि भोगों ने ही आज के संसार को बुरी तरह भोग लिया है।

मुनिवरो ! हम उच्चारण करते–करते कहाँ पहुँच गये। उच्चारण कर रहे थे, 'हे परमात्मन ! तू कल्याण करने वाला है। हे सन्ध्या ! तू कल्याण करने वाली है। आज हमें सन्ध्या का पूजन करना है। **सन्ध्या के गुणों को अपने में धारण करना है।** हमें माता दूर्गे की याचना करनी है। हे माता ! तू अष्ट भुजों वाली और कल्याण करने वाली है। तू आ और कल्याण कर। **यज्ञ करना है।** उसके समीप जाना है। यह है बेटा आज का हमारा आदेश। अब यदि समय मिला तो शेष वाक्य किसी द्वितीय काल में प्रकट किए जायेंगे। अच्छा भगवन्। दिनाँक : 20 अक्तूबर 1963 –दुर्गा अष्टमी, समय : प्रातः 7 बजे, स्थान : भारत सेवक समाज, सरोजनी नगर, नई दिल्ली

३. जीवन में ओउम् का धारण करो 24–4–1965

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! अभी–अभी हमारा कुछ वेद मंत्रों का पाठ चल रहा था। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज पुनः से जिन वेद मन्त्रों का पाठ किया। हमने आज से पूर्व कई स्थलों में वर्णन कराया है कि इस समय हमारी **"शृंगकेतु मुनि संहिता"** का पाठ प्रारम्भ हो रहा है, जिस संहिता में परमात्मा का विज्ञान है, जिसमें मानव जीवन का सुन्दर रूपों में वर्णन किया गया है। एक वेद की ऋचा में संसार के ज्ञान और विज्ञान की महिमा ओत–प्रोत है।

वो ऋचाएं क्या हैं? वो ऋचाएं हमें कहा मिलती हैं और वह क्या वस्तु है? हमारे ऋषि–मुनियों का तो परम्परागतों से यह कथन चलाया गया है कि वेद में नाना प्रकार के मंत्र हैं। उन्हीं वेद–मन्त्रों को हम ऋचा रूपों से प्रकट कर देते हैं। जैसे गायत्री है, हम मां गायत्री को भी ऋचा रूप से पान किया करते हैं। मां गायत्री हमें उदारता और उज्जवलता प्रकट कराने वाली है। यदि हम मां गायत्री को ऋचा कह दें तो यह हमारे लिये असम्भव न होगा क्योंकि वेद की प्रत्येक ऋचा को हम गायत्री कह सकते हैं। प्रत्येक वेद–मन्त्र में वही परमात्मा का विज्ञान आ जाता है इसलिये **हम वेद मन्त्र को गायत्री और छन्द रूप से पुकारा करते हैं। जो गाया जाता है उसे गायत्री कहते हैं।**

एक समय मेरे प्यारे! महानन्द जी ने मुझे संकेत कराया कि आधुनिक समाज तो यह कहता है कि पूर्व संसार में सब असभ्य व्यक्ति रहते थे। आज हम विकासदायक बन गये हैं, नाना प्रकार के मन्त्रों को जाना है। परन्तु मैं आज इस बात का विशेष प्रमाण देना चाहता हूँ **परमात्मा को साक्षी करते हुये** कि यदि हम इस निर्णय पर जाते हैं कि संसार में सूर्य के उत्पन्न होने से पूर्व प्रकाश आया है संसार में। इससे तुम्हें जानकारी हो जायेगी कि जब परमात्मा संसार का विधान बनाता है तो **संसार के विधान में सबसे पूर्व प्रकाश आता है, कम्पनता आती है** और उस कम्पनता और प्रकाश के पश्चात् अन्धकार आता है। यदि प्रकाश न होता तो अन्धकार कोई वस्तु नहीं। इससे हमें प्रतीत होता है कि यदि सृष्टि के प्रारम्भ में जो व्यक्ति या महर्षि उत्पन्न हुआ था वह सभ्य और विशेषज्ञ होगा, औरों को अग्रित करने वाला होगा। आज हमें उन वस्तुओं को विचार लेना चाहिये जिन वस्तुओं से वास्तव में हमें ज्ञान प्राप्त होता है और जिस एक ही वाक्य से हमें प्रतीत होता है कि यह जो वेद रूपी ज्योति है यह अमूल्य वस्तु है। उसी के जीवन में प्रकाश रहा है जिसने इस ज्योति को अपने में धारण किया है उसी अमूल्य ज्योति को हमारे यहाँ ऋचा रूप से पुकारा जाता है। **"ऋचेति ऋचतता"** वह जो ऋचा है वह ऋचेति है,

वह मानव के जीवन को मन्थन करने वाली है। हमें पूर्व से आधारित विचार विनिमय करना चाहिये कि हम अपने जीवन को कितना मन्थन वाला बना सकते हैं।

ब्रह्मा

सबसे पूर्व अंगिरा ऋषि महाराज के शिष्य अर्थव हुये। उन्होंने यहां एक महानता को लाने का प्रयत्न किया और महर्षि अगिरा–ऋषि के कुकरेतु ऋषि महाराज थे जिनसे देखो **''कुकरेता संहिता''** भी विराजमान हैं। आगे चल करके वायु मुनि महाराज और आदित्य–मुनि महाराज के जो शिष्य थे वह महर्षि पिप्लाद थे। महर्षि पिप्पलाद के जो बाबा थे उनकी भी **''विश्वांतित संहिता''** विराजमान है। आगे समय आता रहा आदि आचार्य उनमें संशोधन करते चले आये। मुझे यह गम्भीर वाक्य तो नहीं करना मैं तो केवल तुम्हें वह वाक्य निर्णय दे रहा हूँ जो किसी काल में मेरे प्यारे महानन्द जी! ने प्रश्न किये थे यहाँ अग्नि, आदित्य, वायु और अंगिरा इन चारों ऋषियों के चार शिष्य माने जाते थे। सृष्टि के आदि में ही यदि कोई गुरु हुआ तो ब्रह्मा हुआ। ब्रह्मा को गुरु क्यों कहते हैं, इन्हीं चारों ऋषियों को गुरु क्यों नहीं मान लिया जाता? इसका कारण यह है कि सबसे पूर्व चारों वेदों का यदि कोई मन्थन करने वाला हुआ तो वह एक ब्रह्मा हुआ। इसलिए सभी ने ब्रह्मा को अपने गुरु की चुनौती दी है। हमारे यहां वही गुरु परम्परा अब तक चली आ रही है। अब से लेकर के लगभग एक अरब से भी अधिक समय हो चुका है जब **आदि–ब्रह्मा** हुये और वह ब्रह्मा उपाधि अब तक चली आ रही है। आधुनिक काल का मुझे विशेष ज्ञान नहीं परन्तु मेरे प्यारे! महानन्द जी ने मुझे वर्णन कराया है कि आज भी यज्ञशाला में ब्रह्मा को चुनौती दी जाती है। यह क्या है? यह उसी परम्परागत के आधार से आज भी यज्ञ में ब्रह्मा बनाये जाते हैं।

मेरे प्यारे! महानन्द जी ने मुझे एक समय वर्णन कराया कि बहुत कुछ काल के पश्चात् आज ऐसा कुछ काल आया जब ब्रह्मा, उद्‌गाता, वेद पाठी तो बनाये जाते थे, ब्रह्मा केवल एक कुशा का बनाया जाता था और वह कुशा का ब्रह्मा यज्ञशाला के दक्षिण भाग में विराजमान किया जाता था। उसमें यह था कि आचार्यों ने सोचा कि हम ब्रह्मा के अधिकारी नहीं। यहाँ अधिकारी को चुनौती देनी चाहिए। अधिकार क्या होता है? ब्रह्मा हम किसे कहते हैं? ब्रह्मा उसे कहते है जो चारो वेदों का महान प्रकाण्ड पंडित हो। चारो वेदों के पंड़ित को भी हम अधिक महानता नहीं देते। हमारे आचार्यो ने कहा है कि हम चारो वेदों के पण्डित को भी ब्रह्मा की उपाधि नहीं दिया करते हैं। चारो वेदों पर जैसे ऋग् है, साम् है, यर्जु है, अर्थव है इनको मन्थन करके जो सूक्ष्म रूप बनता है उससे अपने अन्तःकरण में, अपने चित्त पटल को जिसमें सब विश्व का ब्रह्माण्ड समाहित हो जाता है उसमें जो मल–विक्षेप आवरण होते हैं उनको शुद्ध और पवित्र करने के नाते उसे हमारे यहाँ यज्ञशाला में क्या वह संसार में ब्रह्मा कहलाने का अधिकारी होता है।

मैं महानन्द जी के वाक्यों में एक शब्दार्थ और उच्चारण करता चला जाऊ जैसा इन्होंने मुझे सकेत दिया कि यज्ञों पर ब्रह्मा चुने जाते हैं। वास्तव में आज मेरा यज्ञ का प्रकरण नहीं है केवल संक्षेप चर्चा प्रकट करा रहा हूं कि यह आदि–ब्रह्मा की उपाधि अब तक चली आ रही है। आज ब्रह्मा चारों वेदों का भी न हो तो अपने हृदय में जो ऋग् है, साम् है, यर्जु है, अर्थव है इनके सूक्ष्म से आश्रम को मनन करने वाला हो। मनन कैसे किया जाता है? कि चारों में ऋग् में, साम् में, अथर्व में और यर्जु में ''ओ3म्'' रूपी धागा ओत प्रोत हैं उसी ओ3म् रूपी धागे में प्रत्येक वेद की ऋचा उसके अन्तर्गत आ जाती है, कैसे आ जाती है? सुनो हमारा यह हृदय है इसमें मैने **चित्त पठल** का वर्णन किया था मानो हमारे शरीर में एक **चित्त मण्डल** होता है वह प्रकृति के सूक्ष्म महा–तन–मात्राओं का मण्डल होता है। उस सूक्ष्म मण्डल में हम जो भी सूक्ष्म से सूक्ष्म कोई पाप करते है अपशब्द उच्चारण करते हैं वही हमारे उस चित्त पटल में अंकित हो जाता है। पुण्य भी वहां एकत्रित होते हैं, पाप भी वहां अंकित होते है और यदि हम उसी चित्त पटल को शुद्ध और पवित्र बना लेते हैं, मल विक्षेप आवरणों को शान्त कर देते हैं, उन्हें अपनी प्रकाश ज्योंति से दमन कर देते हैं तो यह निश्चित है कि हम जितना यह सूर्य मण्डल है, जितना यह वृहस्पति मण्डल है, जितना ब्रह्माण्ड तुम्हें प्रतीत होता है, यह सब उस चित्त के मण्डल में विराजमान हो जाता है।

उसे हम अपने चित्त में अनुभव करने लगते हैं। जिस पृथ्वी पर हम विराजमान है, जिस पृथ्वी से हम अन्न भी लेते हैं, खनिज पदार्थ भी लेते हैं, यह पृथ्वी ऐसे चला करती है जैसे मानो स्वप्न की अवस्था में कोई स्वप्नवत् कार्य कर रहा है, स्वप्न को अनुभव कर रहा है। स्वप्न ऐसे उद्धत करता है जैसे प्राणमय प्रकृति में कम्पन होता हैं। जैसे परमात्मा सृष्टि के प्रारम्भ में महत् का प्रकृति से मिलान कराता है। एक दूसरे के जो परमाणु हैं वह एक दूसरे से सुगठित होते हैं और उनका एक पिण्ड बनता है और महत् का महान् आक्रमण होता है जिससे वह गति करने लगती है और उसमें एक ऐसा कम्पन होता है कि उसके विभाजन होने अनिवार्य हो जाते हैं। जिनमें चन्द्रलोक, सूर्य मण्डल, बृहस्पति मण्डल और जैसा मैंने कल वर्णन किया था इसमें नाना मण्डल और नाना लोक–लोकान्तर रच जाते हैं। इस सम्बन्ध में मैं आज अधिक चर्चा नहीं करना चाहता सृष्टि का प्रकरण नहीं है। आज तो मैं केवल यह वर्णन कराने जा रहा था कि हमारे शरीर में इसी प्रकार **चित्त पटल है।** वह जो सूक्ष्म परमाणु सृष्टि के प्रारम्भ में एकत्रित होते हैं उनके जो सूक्ष्म से सूक्ष्म तन्तुएं हैं, उनका जो सूक्ष्म रूप है उन्हीं सूक्ष्म रूपों से बना हुआ यह **चित्त मण्डल कहलाता है,** जिसमें तनमात्राएं भी समाहित होती हैं, जिनसे यह बसा होता है। उसी में 'ओ3म्' रूपी धागे से वह सब कुछ शुद्ध किया जाता है। मल–विक्षेप आवरण को दूर करने के लिये, उन को शान्त करने के लिये क्या करना होगा? हमें 'ओ3म्' रूपी सत को लेना होगा।

'ओ3म्' का पाठ

जैसा हमने कल कहा था प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्या को 'ओ3म्' का पाठ करना चाहिये, अपने मुखारविन्दो से 'ओ3म्' की ध्वनि होनी चाहिए। मेरे प्यारे! महानन्द जी संकेत दे रहे हैं कि आज संसार ने ऐसा माना है कि हमें 'ओ3म्' का पाठ नहीं करना चाहिए। इसके लिए हमें अधिकारी और अनाधिकारी को विचार लेना चाहिए। 'ओ3म्' के पाठ करने का किसको अधिकार है यह मैं तुम्हें वर्णन कराये देता हूँ। 'ओ3म्' का पाठ वास्तव में प्रत्येक माता को, प्रत्येक भोजाई को प्रत्येक मानव को करना चाहिये। एक समय भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को एक वाक्य कहा कि हे अर्जुन! आज तुम किस भ्रम में हो। अरे! कोई–कोई तो इस संसार में ज्ञानी होता है और ज्ञानियों में भी कोई–कोई व्यक्ति ऐसा होता है जो मेरे परमधाम को जानता है। यहां मेरे से अभिप्राय गुरु–शिष्य से हैं। जैसा मैंने कई काल में वर्णन कराया है कि गुरु–शिष्य के सम्वाद में **'मैं'** का प्रयोग किया जाता है। इसलिये हे अर्जुन! आज तुम्हें इनका मोह नहीं होना चाहिए। यह संसार तो इसी प्रकार प्रगतिशील है, इसी प्रकार चलता रहता है। बेटा! मैं भगवान कृष्ण के आदेशों पर नहीं जाना चाहता केवल यह चर्चा चल रही थी कि 'ओ3म्' का अधिकारी और अनाधिकारी। 'ओ3म्' का अधिकारी वह होता है जो अपने जीवन में अच्छाइयों को लाने का प्रयत्न करता है। वह 'ओ3म्' रूपी शस्त्र को लेता है। जैसा मुझे महानन्द जी ने वर्णन कराया आज जो व्यक्ति दूसरों को भक्षण करने वाला हो, दूसरों को कष्ट देने वाला हो, जो प्रिय जीवन का भक्त न हो, जिसमें अवगुण हों उसको 'ओ3म्' का पाठ कदापि लाभदायक न होगा। **'ओ3म्' के शस्त्र को ले करके अच्छाइयों को लाना बहुत अनिवार्य है।** उसमें और अच्छाइया आती चली जायेगी, विवेकता आती चली जायेगी। वह अपने गृह को शुद्ध और पवित्र बना सकेगा, उसके पुत्र भी उसके जीवन का अनुसरण करते हुये आगे चलकर वह गृह स्वर्ग बन जाता है। इसलिए अधिकारी और अनाधिकारी की जो मैंने विशेष चर्चा की वह यह है कि **'ओ3म्' के पाठ के लिए हम एक स्थान में विराजमान होते है।**

आज मुझे महर्षि विश्वामित्र, महर्षि पातंजलि और गुरु वशिष्ठ मुनि महाराज जी की चर्चाये स्मरण आती हैं, और भी नाना ऋषियों की चर्चाये आती हैं कि 'ओ3म्' का पाठ किसी प्रकार करते थे। **'ओ3म्' के पाठ में हमारा एक भी श्वास 'ओ3म्' से दूर नहीं होना चाहिए।** जैसे वेद की प्रत्येक ऋचा 'ओ3म्' रूपी धागे से पिरोई हुई होती है इसी प्रकार जो मानव 'ओ3म्' के जिज्ञासु बनना चाहते हैं 'ओ3म्' के मार्ग को अपनाना चाहते हैं उनकों जानना है कि हमें एक भी श्वास 'ओ3म्' से दूर नहीं जाने देना है। मुझे यहां **महर्षि अटुटी** (शमीक ऋषि) मुनि महाराज की चर्चा भी स्मरण आती है। महर्षि अटुटी मुनि महाराज की माता ने जब वह बाल्यावस्था में था एक

आदेश दिया कि पुत्र यदि तू मेरे गर्भ को ऊंचा बनाना चाहता है तो तेरा एक श्वास भी 'ओ3म्' से दूर नहीं होना चाहिये। उस बालक ने वही किया। वह गति से श्वास पर 'ओ3म्' का पाठ करता।

वेद की नाना व्याहृतियों में कहा जाता है, वेद के भिन्न–भिन्न क्षेत्र में आता है, वेद की भिन्न–भिन्न ऋचाओं में विवरण आता है और वह कितना सुन्दर है, कितना लाभदायक है, उसमें कितनी योगिकता है हमें इसे विचार लेने की आवश्यकता है और वह क्या है?

"'ओ3म्' आ ब्रह्मणें ओमस्चति विशार आचति विश्यम् मम देवाः

चितम् भवे नेति श्वासम् प्राणाः द्वितीय अश्चतेः प्रजाः।"

जैसा देखो यहां श्वांस पर श्वांस चलता है **ऋग् और साम् का यह आदेश है कि 'ओ3म्' से हमें प्रत्येक श्वांस को पिरो देना है।** जब हमारा श्वांस 'ओ3म्' से बिंधा हुआ होगा और जब वह अन्तरिक्ष में जायेगा, वायु मण्डल में जायेगा वहीं वह शुद्धता को लेता चला जायेगा। जिस प्राण में दुर्गन्धता होती है, जिस प्राण में मिथ्यता होती है, जिस प्राण में कोई महानता नहीं होती है वह वायु में मिश्रत हो करके हमारे वह प्राण न प्रति किस महान् आत्मा को दूषित कर देते हैं।

मुझे **महर्षि लोमश** के शब्दार्थ स्मरण आ गये यह तो मैं नहीं कह सकता यह उनका आत्मिक निर्णय हुआ था या नहीं परन्तु उन्होंने ऋषियों की सभा में यह कहा था कि जो भी मानव, जो भी आत्मिक वेत्ता, ब्रह्म–वेत्ता हो, कोई भी संसार में विचरण करने वाला हो जो संसार में क्रोध करता है उस क्रोध से मानव की आत्मिक सत्ता इतनी बिखर जाती है कि उन परमाणुओं को कोई वैज्ञानिक यन्त्रों से एकत्रित कर लेता है और **"ग्रितित"** नाम के यन्त्र से मानव को छुआ देता है तो उस एक ब्राह्मण से सहस्त्रों प्राणियों का हनन हो सकता है। यदि हमें योगी बनना है, 'ओ3म्' के मार्ग को अपनाना है तो वास्तव में हमें अपने जीवन में इन्द्रियों पर शासन करना होगा। देखो, **जब भी तुम्हें संसारिक कार्यों से समय मिले, उस काल में तुम्हारा श्वांस व्यर्थ नहीं जाना चाहिये। कैसे उच्चारण होना चाहिये**, उसकी क्या **विधि** है इस सम्बन्ध में मुझे महर्षि वशिष्ठ मुनि का वचन स्मरण आ गया।

'ओ3म्' उच्चारण का विधि–विधान

मुझे **महानन्द ऋषि** ने वर्णन कराया कि आधुनिक काल में यह कहते हैं कि "सोहंगम् ब्रह्मणे अश्चिनाः" कि सोंहग का पाठ दे देना चाहिये। सोंहग जो गुरु मन्त्र है यह महर्षि वशिष्ठ का था। यह वाक्य तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह कोई रूढ़िवादियों का शब्दार्थ हो क्योंकि इसें सोंहग शब्द आता है। **'सौंहंगम् ब्रह्मणे वस्तूताः'** हे परमात्मा! जो तू है वही मैं हूं। मानो देखों मैं का प्रयोग आता है। यदि इसी रचना को लेकर चलते हैं तो वास्तव में उत्थान तो हमारा तब भी हो सकता है परन्तु हमें आगे चलकर नाना प्रकार की विवेचनाएं, नाना प्रकार की विचार धाराएं अग्रेति और प्रकृति के आंगन में अवश्य आ सकती है और 'ओ3म्' रूपी एक ऐसा धागा है **कि जब श्वांस की गति ऊपर को जाती है तो उस समय 'ओ3म्' उच्चारण करो 'ओ3म्' अपने मन में रहना चाहिए और जिस समय वायु गति नीचे को नासिका और घ्राण के स्थान में आये उसी काल में शान्ति का पाठ होना चाहिये। 'ओ3म्' की व्याहृति ऊपर है और नीचे आने वाला श्वांस शान्ति है।** इसका अभिप्राय यह है कि मेरा जो ब्रह्माण्ड है उसमें 'ओ3म्' का वास है और यह जो मेरे नीचे वाला भाग हैं यह हर प्रकार शान्तिदायक रहे।

राष्ट्र में 'ओ3म्' की पतिका

आज का संसार शान्ति चाहता है, राजा हो या प्रजा हो सब शांति चाहते हैं। यदि शांति को अपनाना है और राजा अपने राज्य में शांति चाहता है तो उसके अपने राष्ट्र में 'ओ3म्' रूपी पताका होनी चाहिए और 'ओ3म्' के पिछले विभागों में शांति होती है क्योंकि शांति पीछे चलने वाली होती है और वह पीछे क्यों रहती है? वह इसलिये रहती है क्योंकि शांति होने से पूर्व उन मानव के जो आचरण हैं, उसके जो विचार हैं, वह किसी वस्तु

पर केन्द्रित हो जाते हैं। जब विचार एकत्रित हो जाते हैं, एक गोले के तुल्य आ जाते है, एक स्थान में केन्द्रित हो करके उसके पिछले विभाग में शांति का पथ आता है। आज का संसार यदि शांति को चाहता है, मुझे आज भी महानन्द जी की प्रेरणा है कि आज का संसार चाहता है कि संग्राम न हो, नाना यन्त्रों का अविष्कार न हो। मैं तो इन वाक्यों का समर्थन करने वाला नहीं कि शांति भी हो सकती है। आज के संसार में, शान्ति उस काल में आयेगी जब सबसे पूर्व समस्त राष्ट्रों को एक समाज बनाना होगा और उस समाज में यह अपनाना होगा कि हम शांति कैसे ला सकते हैं। प्रत्येक राष्ट्र में एक महान् पण्ड़ित, प्रतिनिधि होना चाहिए और महापण्डित के भुजों में एक 'ओ3म्' पतिका होनी चाहिये और वह पण्डित, ब्राह्मण उस सभा में यह प्रसार करने वाला हो, यह उच्चारण करने वाला हो कि अरे! तुम्हारे सबके राष्ट्र में 'ओ3म्' रूपी पतिका हो और शांति तुम्हारे राष्ट्र में स्वतः आती चली जायेगी। यह 'ओ3म्' रूपी पतिका है क्या? 'ओ3म्' रूपी पतिका केवल अक्षरों में ही नहीं है, यह केवल एक वस्त्र पर बद्ध नहीं है 'ओ3म्' रूपी पतिका वह है जो देखो मानव के चित्त पटल पर अंकित हो जाती है जब मानव आन्तरिक भावनाओं से पतिका बन कर प्रत्यक्षवादी होता है तो संसार स्वर्ग बन जाता है। आज हम इसको क्यों नहीं अपनाते। यह निश्चित है कि आज का संसार जब तक इसे नहीं अपनायेगा तो संसार में शान्ति असम्भव है।

मुझे ऋषियों का आदेश मिला है, गुरुओं ने मुझे वर्णन कराया है कि यहां वह समय था जब यहां महाराजा दलीप क्या हरिश्चन्द्र जिनके आगे वह पतिका थी और उसके पश्चात् शान्ति का प्रतीक था। वह आज कहां है? उसे लाने की आवश्यकता है। मैं यह भी नहीं कहता कि संसार में यह होना चाहिये मैं तो यह कहता हूं कि यदि एक राष्ट्र भी इसको अपना ले और आगे चल करके जब उसका समाज संसार में जहाँ जाता है वही उसका आदर होता है, जहां जाता है वहीं उसके विचारों को अपनाने के लिये उद्यत होते हैं। अच्छे विचारों को कौन नहीं अपनायेगा परन्तु जब अच्छे विचार आयेंगे तो कोई अपनायेगा। परन्तु अच्छे विचार केवल वाणी मात्र से नहीं। अरे! वह जो तुम्हारे द्वारा चित्त मण्डल है उसके ऊपर जब–जब 'ओ3म्' रूपी अक्षर अंकित हो जाते है तो उस समय पवित्रता आती है, शान्ति आती है, वास्तविकता आती है, उसी से यहाँ जीवन बनता है।

शान्ति

मुनिवरो! मुझे **ऋषि महानन्द जी** का संकेत मिलता रहता है। इनका प्रत्येक वाक्य बड़ा महत्वपूर्ण होता है। इन्होंने मुझे आधुनिक काल की चर्चायें कई काल में प्रकट की हैं। इनके विचारों से यही प्रतीत होता है कि आज केवल वाणी से ही शान्ति चाहते हैं, नेत्रों से नहीं शांति चाहते, प्राण से नहीं चाहते, घृणा से शांति नहीं चाहते, हस्त से शांति नहीं चाहते, ग्रीवा से शांति नहीं चाहते, उपस्थ इन्द्रियों से शांति नहीं चाहते। केवल एक वाणी मात्र के उच्चारण से शांति आयेगी तो यह कदापि नहीं आयेगी। यह भी आ सकती है परन्तु तभी जब तुम्हारी वाणी शुद्ध हो। अरे! वाणी से जिसकी तुम कल्पना करते हो वह कल्पना शांत हुई तो उसी वाणी से कुछ और उच्चारण किया जाता है। क्या यह शांति आवेगी? अरे! यह एक वाणी भी तो तुम्हारे द्वारा नहीं है।

कलियुग का वर्णन

देखो! देव ऋषि नारद, महर्षि कुर्कुटी ऋषि महाराज जब कलोयुग (कलियुग) का वर्णन कराने लगे तो देव ऋषि नारद ने एक वाक्य कहा था कि एक काल वह आयेगा संसार में जिसे कलोयुग कहेंगे जिसमें मानव में न तो नेत्रों की शुद्धता रहेगी, कोई इन्द्रिय सजी हुई न होगी केवल क्या सजी हुई होगी? वाणी सजी हुई होगी, उपस्थ इन्द्रिय सजी हुई होगी। केवल दो इन्द्रियों का प्रभाव रहेगा। वाणी में तो नाना भक्षण करने के स्वादिष्ट पदार्थ होंगे और उपस्थ इन्द्रियों से नाना भोग विलासों के साधन होंगे। जैसा **ऋषि महानन्द** ने आधुनिक काल का वर्णन कराया है उससे यह प्रत्यक्ष हो चुका है। आज के लाखों वर्ष पूर्व जो महर्षि नारद अपने शब्दार्थो में अंकित कर चुके थे वह शब्दार्थ आज अशांतिवादी प्राणियों के समक्ष हैं।

शान्ति के प्रतीक

मेरे आचार्य–जनो! आज हम शांति के प्रतीक की चर्चा करते चले जा रहे थे। आज का विश्व शांति चाहता है। शांति भोग विलासों से प्राप्त नहीं होती। अरे! शांति तो शुद्ध पवित्र सन्तान को उत्पन्न करने से मिलती है। जीवों को भक्षण करने से नहीं, अरे! यहां तो उस काल में शांति मिलती है जब मार्ग की जो सुगन्धि–दायक औषधियां हैं, सुगन्धिदायक वनस्पतियां हैं उन्हें पान कर करके शान्ति को संगठित किया जाता है। वह समय था जब महाराजा विश्वामित्र थे, वशिष्ठ थे, अरे! शान्ति का पाठ दिया करते थे। मुझे प्रभु की कृपा से वह समय देखने का सौभाग्य मिला। अरे! वह समय कितना उज्जवल होता है जहां गुरु होते हैं। गुरु वशिष्ठ क्या दिया करते थे? ऋषि वशिष्ठ मुनि महाराज एक वर्ष में छः माह तो वनस्पतियों का आहार करते थे। पत्तों का आहार! अरे! कहां वह प्रतीक जिन्होंने भगवान् राम को अपने चरणों में विराजमान कराकर विश्व का अश्वपति बनाया और उसने संसार में शांति को स्थापित किया। आज उसे क्यों नहीं अपनाया जा रहा है? इसलिये नहीं अपनाया जा रहा है कि वाणी में कुछ है कार्य में कुछ है। बाहरीय भावना कुछ है और आन्तरिक भावना कुछ और है।

शान्ति का मार्ग

संसार में शांति लाने का यदि कोई मार्ग है तो वह केवल 'ओ3म्' की पतिका है। जैसे मन्त्रालय के भवन के ऊपर 'ओ3म्' पतिका स्थापित की जाती है तो वह वायु की तरंगों में जैसे समुद्र की तरगें अपना प्रदर्शन करती है इसी प्रकार वायु में वह जो 'ओ3म्' की पतिका है वह लहराती है और वह तरंग रूपी बन करके शान्ति का प्रदर्शन करती है। इसी प्रकार हमारे इस मानव शरीर में शान्ति का प्रदर्शन करती हैं इसी प्रकार हमारे इस मानव शरीर में शान्ति को यदि लाना है तो 'ओ3म्' को अपनाना है। हमारे मानव शरीर में कोई तरंगे आयें वह सदाचारता से, 'ओ3म्' रूपी धागे से पिरोई हुई तरंगे होनी चाहिये। मेरे प्यारे ऋषि मंडल! आज हम कहां जा रहे हैं? इस 'ओ3म्' रूपी धागे को विचार लो। **अरे! परमात्मा ने तो ऐसा ज्ञान दिया है परन्तु यह मानव कितना अभागा है कि इतने शुद्ध और पवित्र ज्ञान को नहीं विचारता।** अरे! मनुष्य उस काल में अभागा होता है जब वह परमात्मा की देन को नहीं विचारता। आज बेटा! हम भी अभागे बनते चले जा रहे हैं और मेरे महानन्द जी भी अभागे बनते चले जा रहे हैं। परन्तु मैं महानन्द जी पर आक्रमण नहीं कर रहा कि वह अभागे बन जायें और न यह अभागे हैं परन्तु अभागे वह बन जाते हैं जो 'ओ3म्' का पाठ नहीं करते। जो 'ओ3म्' रूपी धागे को अपने में धारण नहीं करते, श्वास में नहीं पिरोते।

मैंने 'ओ3म्' उच्चारण का विधि विधान अभी उच्चारण किया है और वह यह है कि यदि ऊपर तुम्हारी व्याहृति रहे तो 'ओ3म्' रहे और नीचे रहे तो शान्ति। नीचे शांति का अभिप्राय क्या है और ऊपर क्या अभिप्राय है? मुनिवरों देखो! इस संसार में शांति हो और उस के ऊपर आगे चलने वाला हो। जिससे मानव को वास्तविक शांति प्राप्त होती है। आज यदि कोई राजा अपने राष्ट्र में शांति चाहता है, अपनी प्रजा को ऊंचा बनाना चाहता है, उसका राष्ट्रीयकरण करना चाहता है तो राजा को चाहिये कि राजा अपने राष्ट्र में 'ओ3म्' रूपी पतिका को लहराने का कर्त्तव्य करें। सबसे पूर्व उसके राष्ट्र में बुद्धिमानों का एक ऐसा समाज होना चाहिये जिन बुद्धिमानों में किसी प्रकार का मत न हो। उनका केवल मत यह हो कि 'ओ3म्' रूपी पतिका हो उनके भुजों में और उनके अन्तःकरणों में शांन्ति हो और वह संसार को शांति का पाठ पढ़ाते चले जायें। यह समाज, राष्ट्र को सुगठित करेगे। आगे चल कर इसी समाज में नाना राष्ट्रों के पण्डित भी आ सकते हैं। संसार में इस पतिका का इस प्रकार प्रसार हो सकता है। आज हमें इस पतिका को ले करके चलना है। आगे चलकर हमें अपने जीवन को विकसित बनाना है और इन वाक्यों को त्याग देना है कि यह वेद कब उत्पन्न हुआ, किस काल में इसका प्रादुर्भाव हुआ और यह वेद ऋषि का काव्य है या यह जो वेद रूपी ऋचाएं हैं यह क्या है। **इन विचारों पर जाना है कि जो ऋषि–मुनियों ने किया है वह कितना महत्त्वदायक है, कितना विचारवान् है, हमें तो उसके ऊपर चलना है।**

मेरे प्यारे! महानन्द जी का एक संकेत मिला कि क्या ऐसा किसी काल में हुआ भी या अभी करना चाहते हो। परन्तु यह आज का नहीं यह परमात्मा ऋषि–मुनियों का एक सुगठित विचार है और उन विचारों को मैं प्रकट करता चला जा रहा हूँ। जब महाराजा दलीप थे उस काल में यह था। राजा दशरथ कुछ भोग विलास में परीणत होकर सब कुछ शान्त कर गये थे। भगवान् राम ने अपनी महान् पिताओ की परम्पराओं को लेकर के, उसी 'ओ3म्' की पतिका को लेकर के, संस्कृति की पतिका को ले करके सब कुछ किया। कौन से राज्य में शांति नहीं थी जब भगवान राम अताताईयों को नष्ट करके, सबको विजय करके अयोध्या में आ गये थे। इसी से **भगवान राम के जीवन में कोई वास्तविकता मिलती है तो वह राष्ट्र भक्ति मिलती है।** अब इनको अपनाने से हमारा जीवन बनेगा। अच्छाईयों को संसार मानेगा और उन अच्छाईयों का विश्व में प्रसार होगा। परन्तु जब अपनी अच्छाईयों को समझोगे ही नहीं विचारोगे नहीं तो अपनी अच्छाईयों को अपने आंगन में नहीं ला सकोगे, तो तुम्हें कौन जानेगा। अरे! कोई नहीं जान सकेगा।

आज हम इन सब आदेशों को मनु जी की प्रणाली पर प्रकट कराते चले जा रहे थे। आज हमारा 'ओ3म्' के ऊपर शब्दार्थ चल रहा था। 'ओ3म्' को उच्चारण करने का सबको अधिकार है या नहीं। **'ओ3म्' का उच्चारण करने का अधिकार प्रत्येक मानव और प्रत्येक देव कन्या को है, प्राणी मात्र के लिए है।** कल कुछ मेरे प्यारे! महानन्द जी उच्चारण करेगें कि 'ओ3म्' कैसे उच्चारण किया जाता है और कुछ आधुनिक काल की चर्चा प्रकट करेंगे। संक्षेप में चर्चा यह है कि आज के संसार को शांति लानी है। मानव में शांति लानी है। मानव के हृदय में शांति हो और जितनी इन्द्रियां हैं उनके बिखरे हुए विचार प्रगतिशील हों। वह दुर्गुणों में बिखरे हुये नहीं होने चाहियें वह सब विचार अच्छाईयों में परणित होने चाहिये। जैसे परमात्मा इतना उज्जवल है वह प्रकृति के एक एक कण में एक एक परमाणु में बसा है, ओत प्रोत है। इसी प्रकार मुनिवरों! मानव के शरीर में परमात्मा का अग्रित हैं। आज हम उस परमात्मा की प्रार्थना करते हुये, परमात्मा का प्रिय पुजारी बनते हुये, अन्त में हमें परमात्मा को सहायक बनाना है और यह विचार करके कि जो कुछ यह परमात्मा ने हमें दिया है यह मेरा नहीं है यह किसी काल में परमात्मा ने दिया है और वह काल भी आयेगा कि परमात्मा इन सबको हमसे ले लेगा, अपने में धारण कर लेगा। मानव को तो इन विचारों को लेना है। इन विचारों को लेकर के जो व्यक्ति चलता है, जो राष्ट्र चलता है वही बेटा! संसार में विचित्र होता है। महाराजा हरिश्चन्द्र ने क्या किया? बेटा! तुम्हें स्मरण होगा जब महाराजा हरिश्चन्द्र को स्वप्न में प्रतीत हो गया कि यह राष्ट्र मुझे दान में देना है परन्तु वही स्वप्न उसका पूर्ण हो गया। विश्वामित्र साधु के रूप में आ गये और कहा कि राष्ट्र मेरा है, मुझे दो। राजा हरिश्चन्द्र को जो स्वप्न प्रतीत हुआ था वह स्वप्न यथार्थ में ला करके सब कुछ दान कर दिया। उनकी पत्नी ने कहा कि भगवन् यह आपने क्या किया? हम तीन ही प्राणी हैं, आप और हम और एक पुत्र है, आपने यह क्या किया? उस समय महाराजा हरिश्चन्द्र ने कहा कि देवी! **यह शरीर भी हमारा नहीं है, यह राष्ट्र तो इन साधुओं का है, राष्ट्र तो महान् आत्माओं का है।** राष्ट्र में जितनी अधिक महान् आत्मा होंगी उतना ही राष्ट्र प्रगतिशील और शान्ति वाला होगा और देवी! हमारे आन्तरिक भावनाओं में त्याग भावना होगी तो देवी! यह राष्ट्र तो हमें पुनः प्राप्त हो सकता है, इसकी तुम्हें क्या चिंता है। अपने जीवन में अन्न का अंकुर न मिले परन्तु वाणी का जो संकल्प है उसको पूर्ण करने का प्रयत्न करना है। आज यदि तुम्हें स्वप्न में भी प्रतीत हो जाये, यथार्थता में उच्चारण कर जाओ परन्तु वह संकल्प, वह जो तुम्हारे द्वारा वाणी का विचार है वह पूर्ण होना चाहिए। मनों का जो विचार है वह पूर्ण होना चाहिए परन्तु उस विचार में त्याग और तपस्या का बल होना चाहिए। देवी! आज हमें अन्न का अंकुर न मिलें, आज हम अपने शरीर को शांत कर दें परन्तु त्याग में हमारी भावना होनी चाहिये। देवी! राजा वहीं होता है जो राष्ट्र के ऐश्वर्य को त्याग करके भिक्षुक बन जाता है। एक काल राजा का वह आता है कि वह भिक्षुक बन जाता है। देवी! आज परमात्मा हमारी परीक्षा कर रहा है जिस परमात्मा ने हमें यह देन दी है, जिस परमात्मा ने यह राष्ट्र दिया है वह परमात्मा आज अपने राष्ट्र को ले रहा है इनका हमें शोक नहीं होना चाहिये। यह राष्ट्र हम मग्न होकर देते चले जा रहे हैं। हे देवी! यह **जो हमारा शरीर है यह भी परमात्मा की देन है और यह परमात्मा**

ने त्याग और तपस्या के लिये दिया है। शांति के लिये परमात्मा ने दिया है कि इससे तुम आत्मा का उत्थान करो। आत्मा में शान्ति लाने का प्रयत्न करो। देवी! एक समय वह आयेगा कि परमात्मा ने जो यह गृह रूपी शरीर दिया है यह भी परमात्मा हमसे ले लेगा। इसलिये देवी हमें शोक नहीं होना चाहिये। जो राजा प्रजा के ऐश्वर्य को भोगता है, प्रजा के ऐश्वर्य को लेकर के अपने ऐश्वर्य की पूर्ति करता है, नाना प्रकार की राष्ट्र की सुविधायें होती है। हे देवी! यदि वह परमात्मा के प्रकोप से या प्रकृति के प्रकोप से या प्रजा के प्रकोप से यदि हमें भिक्षुक बनाना चाहता है यह संसार ऋषि समाज बनाने के लिये तो मैं उसके लिये उद्यत हूं। जब हमें यह भावना होगी तो हमारा राष्ट्र, हमारी मानवता, हमारी आन्तरिक भावना क्यों न ऊंची बनेगी, देवी! आज हमारे द्वारा यह भावना होनी चाहिये। उन्हीं भावनाओं से हमारे जीवन में क्रांति आती है, हमारे जीवन में सम्पन्नता आती है, हमारे जीवन में मानवता आती है, योगिकता आती है कि हमारा आत्मा परमात्मा की गोद में विश्राम करता है।

तो बेटा! **वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि आज हमें सबसे पूर्व अपनी आन्तरिक भावनाओं में 'ओ3म्' रूपी धागे से हमारा जो चित्त का मण्डल है वह पिरोया हुआ होना चाहिये।** वह नाना प्रकार के विकारों से नहीं उसमें तो 'ओ3म्' रूपी धागे को समाहित करना है। मुनिवरो! 'ओ3म्' को समाहित करते चले जाओ, 'ओ3म्' को उच्चारण करते चले जाओ, हमारा जीवन ऊंचा बनता चला जायेगा। उसमें **त्याग और तपस्या की भावना होनी चाहिए।** यह है आज का हमारा संक्षेप आदेश। धन्य हो! गुरु जी आदेश तो बहुत ही सुन्दर। अच्छा भगवन्। दिनाँक : 24–4–1965 स्थान : रामाकृष्णा पुरम, नई दिल्ली

४. यौगिक–साधना 20 फरवरी 1970

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहां परम्परा से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण किया जाता है जो वास्तव में मानवत्व को सुन्दर बनाने वाली है। क्योंकि मानव जगत एक महान् कहलाया गया है। जिसके ऊपर हमें सदैव विचार विनिमय करना है, अनुसन्धान करना है। आज हम अपने मानवत्व को सुन्दर बनाना चाहते हैं। मेरे प्यारे ऋषिवर! हमारे यहां आचार्यजनों ने ऋषियों ने वेद के लिए बहुत कुछ सुन्दर अपने विचार दिए हैं। परन्तु उन विचारधाराओं में हमारा जो एक मानवीय जगत् है वह सुन्दर कहलाया गया है। मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का जो हमारा वेद का प्रकाश है वह मानव को सुन्दर बनाने वाला है। मेरे प्यारे ऋषिवर! हमारे यहां उस परमपिता–परमात्मा की प्रतिभा का सदैव गुणगान गाया जाता है। हे आनन्दमय, सुन्दर बनाने वाले, तू हमारे जीवन को उद्बुध करने वाला है। जब हम तेरी प्रतिभा पर विचार विनिमय करने लगते हैं तो हमारा जीवन सुन्दर होने लगता है।

मेरे प्यारे ऋषिवर। आज जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि हमारा जो जीवन है उसमें कितनी सुन्दरताएं और कितनी होनी चाहिए? उसके ऊपर हमारा सदैव विचार होता रहा है। आज का हमारा वेदपाठ उस महान् पाण्डितय से युक्त था, जिस परम्परा से वह युक्त रहा है। मेरे प्यारे ऋषिवर। हमारे जीवन में एक महत्ता को लाने की सदैव आवश्यकता रहती है। क्योंकि हमारे जीवन में जो सूक्ष्मता रहती है, वह हमारी धृष्टता होती है। परन्तु उसमें सुन्दरवाद नहीं होता। मेरे प्यारे ऋषिवर। मुझे नाना प्रकार की प्रेरणा देते रहते हैं। उनका विचार विनिमय होता रहता है। जहां हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि हमारी मानवीय जो संकलित प्रतिभा है, उस प्रतिभा में एक ओज होना चाहिए। जिस ओज के द्वारा हमारे जीवन में एक मौलिक तत्व उत्पन्न हो जाता है। जिस मौलिक चेतना के आधार पर हमारे जीवन में एक महत्ता का दिग्दर्शन होने लगता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि हमारा जौ मौलिक जीवन है मानवत्व से गुथा हुआ है। हमें उस पर सदैव विचार विनिमय करना है।

इन्द्रियों पर अनुसन्धान

आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं आज तुम्हें यह वाक्य प्रकट कराने जा रहा हूँ। हमारे यहां परम्परा से ही ब्रह्मवेत्ताओं के सम्बन्ध में नाना प्रकार की विचारधारा अथवा उसका विनिमय होता रहा है। हमारे यहां जैसे महर्षि जमदग्नि आश्रम, महर्षि भारद्वाज आश्रम की विवेचना आती रहती है। नाना प्रकार की वार्ता जो मानव के मस्तिष्क में प्रायः ओत–प्रोत रहती है, वह मानवता से ही तो सुगठित रहती है। हमारे यहां एक समय महात्मा दधीचि आश्रम में सभा हुई। महात्मा आश्रम में जो ब्रह्मवेता कहलाए जाते थे; अश्विनी कुमार क्योंकि आयुर्वेद के महापण्डित होने के नाते औषधियों के ऊपर बड़ा उनका अनुसन्धान रहा है। ये महर्षि दधीचि के ब्रह्मज्ञान में शिष्य थे। संसार में प्रत्येक वस्तु अनुसन्धान चाहती है। कोई भी वस्तु हो, मानव के चक्षु भी अनुसन्धान चाहते हैं, घ्राण भी अनुसन्धान चाहती है। परन्तु जब हम यौगिक साधना में जाते हैं उस समय भी हमें अपनी प्रवृत्तियों पर अनुसन्धान की आवश्यकता रहती है। मेरे प्यारे ऋषिवर! जब हम अनुसन्धान की दृष्टि से अन्वेषण करने लगते हैं तो उस समय हमें यह प्रतीत होने लगता है कि हमारा जो जीवन है वह वास्तव में महान् पवित्र कहलाया गया है। मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा वैदिक परिचय यह है कि हम वेद की प्रतिभा को लाने के लिए सदैव तत्पर रहें। महात्मा दधीचि के आश्रम में एक सभा हुई जिसें अश्विनी कुमार इत्यादि विराजमान थे, आदि–ऋषिवरों का विचार विनिमय प्रारम्भ होने लगा। मुनिवरो! देखो, एक भौतिक तत्व से विराजमान रहता था। केवल महात्मा दधीचि ने आदि ऋषियों के समक्ष एक प्रश्न किया। कि यह जो संसार है, यह सब प्रकार से सुखद रहना चाहिए। मानव सुखद होने का कारण क्या है? आज मानव कैसे सुखद बन सकता? कैसे उन्नत बन सकता है? तो प्यारे ऋषिवर! यह वाक्य महात्मा दधीचि के ही द्वारा नहीं महात्मा जमदग्नि इत्यादियों ने इस वाक्य को समर्थन किया। कहा कि वास्तव में विचार विनिमय होना ही चाहिए कि मानव का जीवन कैसे सुखद बनता है? कैसे आनन्द को प्राप्त होता है? तो मेरे प्यारे ऋषिवर! यह वाक्य उनके विचारों में था। परन्तु इस समय महर्षि भारद्वाज जो सभापति बनाए गए थे उनके द्वारा ही नाना प्रकार के प्रश्न आने लगें। क्या यह संसार कैसे सुखी बनेगा? संसार को सुखद बनाना है। मुनिवरो! उन्होंने एक विचार धारा मानव के लिए नियुक्त की। नियुक्त करते हुए उन्होंने कहा कि आज मानव को सुन्दर बनना है अथवा प्रत्येक मानव समाज को उन्नति के एक शिखर पर जाना है। हमें वास्तव में उन्नत बनना है। क्योंकि जिसको लाने के लिए हमारा जीवन हमारी मानवता उस महान भौतिक तत्व से सुगठित रहती है। मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है? हमारी एक धारा क्या कह रही है? महर्षि भारद्वाज ने अपनी शब्दावलियों में कहा है कि मानव को सुखी बनना है। मानव को उत्तम बनना है। तो संसार में अपनी इन्द्रियों के ऊपर अनुसन्धान करना है। हमें यौगिक प्रक्रियाओं में जाना है। यौगिक साधना में जाना है।

चेतना का स्मरण

यौगिक साधना है क्या? जिससे मानव उस ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है! ब्रह्मवेत्ता बनता चला जाता है महात्मा भारद्वाज महर्षि जी ने अपना वक्तव्य देते हुए अपने अनुभव का एक वाक्य प्रकट किया। उन्होंने कहा था कि संसार में जो यौगिक साधना में जाना चाहता है। साधक बनना चाहता है, उसको आवश्यकता है कि वह अपने मन को संयम में लाए। परन्तु मन को संयम में, कैसे उपरामता में लाया जाता है? मुनिवरो! जब मानव के प्रत्येक श्वास के साथ उस महान् चेतना का स्मरण होगा। यह! देखो, ब्रह्म की चेतना का स्मरण करना ही मानव को **आत्मपद** की चेतना को जागरूता में लाना है। वह जो जागरूक चेतना है उसी के द्वारा तो एक महत्ता का दिग्दर्शन होता है। अहा! उसी के द्वारा एक मानवता के सुन्दर–सुन्दर अंकुर मानव में उत्पन्न हो जाते हैं। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मैं अधिक विवेचना नहीं प्रकट करने जा रहा हूँ। केवल वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है कि हम सदैव उस आनन्दमयी चेतना को हम जानने में कितनी उन्नति को प्राप्त हो सकते हैं। इसके ऊपर हमें बारम्बार अनुसन्धान करना है, विचार विनिमय करना है। जिससे हमारे जीवन में एक मौलिक तत्त्व उत्पन्न होता चला जाए।

तप

मेरे प्यारे ऋषिवर! जब हम यह विचारते रहते हैं कि हमारा जीवन वास्तव में यौगिक प्रक्रियाओं से सन्नद्ध रहता है, तो बेटा! मानव योग की विवेचना करने में सफल नहीं हो पाता। मानव के लिए हमारे आचार्यों ने तप के लिए बड़ी मीमांसा की है। कि मानव का जो मन है वह तपने से सुन्दर बनता है। हमारे यहाँ तप किसे कहा जाता है? तप की मीमांसा क्या है? आज जो मानव तपस्वी बनना चाहता है उसके द्वारा कौन सी ऐसी प्रतिभा है? जिससे वह तप को प्राप्त हो सकता है। मुनिवरो! वह तप है प्रत्येक इन्द्रियों को अपने संयम में बनाना, उसका आहार सुन्दर हो उसका व्यवहार सुन्दर, उसकी वाणी पर संयम हो, प्रत्येक इन्द्रिय उस की अपने अपने संयम में हो। तो वह मानव संसार में साधक बनने, यौगिक प्रक्रिया के यौगिक आसन पर यौगिक मार्ग पर जाने के लिए वह अपनी एक प्रतिभा बनाता है। उस प्रतिभा से ही जगत को उन्नत बनाया जाता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ।

महर्षि जी ने कहा कि यदि संसार को सुखद बनाना है तो केवल एक ही प्रक्रिया है, एक–ही साधना है, जिस साधना के द्वारा यह जगत उन्नत बन सकता है, पवित्रता को प्राप्त हो सकता है कि वह अपनी इन्द्रियों को संयम में बनाए और तप में बनाए। हमारे यहां तप की जो मीमांसा है वह सबसे प्रथम आहार है। क्योंकि आहार उत्तम होना चाहिए, आहार में हिंसा के विचार भी नहीं होने चाहिए। मेरे प्यारे महानन्द जी! यह कहा करते हैं कि मांस भक्षण करने में दोषोरोपण नहीं होता। परन्तु मैं यह कहा करता हूँ क्या वास्तव में मांस भक्षण करने के लिए मानव को किसी प्रकार का दोष तो नहीं होता? परन्तु जो मानव किसी प्राणी को नष्ट करता है आह! जिस समय वह अपनी भुजाओं से किसी को भी नष्ट करता है उसके प्राण दूर चले जाते हैं वह जो रक्त है वह जो मांस है उस मास के रक्त के कण–कण में हिंसा ओत प्रोत हो जाती है। जब हम उस हिंसा भरे आहार को पान करते हैं आह! वही मौलिक जो परमाणु होते हैं, हिंसक परमाणु होते हैं, सूक्ष्म परमाणु होते हैं, हिंसक परमाणु होते हैं भ्रष्ट, वे मानव की प्रवृत्ति को नष्ट और भ्रष्ट करते चले जाते हैं।

इसीलिए हमारे यहां विचार आता रहता है। हमारे ऋषि मुनियों ने बेटा! **'अहिंसा परमोधर्म'** के सम्बन्ध में अपने बहुत सुन्दर विचार दिए हैं। अपने विचारों को व्यक्त करते हुए आचार्यों ने कहा है क्या हम जगत को उन्नत बनाना चाहते है? परन्तु इससे हमारा जीवन उन्नत होता रहे और यौगिक प्रक्रियाओं पर हम वास्तव में साधना को प्राप्त कर सके। मानव को 'अहिंसा परमोधर्मः' की वेदी पर इतना पहुंच जाना चाहिए जिससे मृगराज भी उसके लिए सामान्यता को प्राप्त हो इससे जगत् एक सामूहिक रूप बन जाता है। ऐसा जो मौलिक विचार होता है, ऐसी जो धारा होती है वही तो इस जगत् को उन्नत बनाती चली जाती है। मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मैं अपने इन वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ। अब मेरे प्यारे महानन्द जो अपने कुछ वाक्य प्रकट करेंगे। हमारा तो केवल यही विचार था कि हम यौगिक प्रक्रियाओं को उत्तम बनाना चाहते हैं। अच्छा भगवन्। दिनाँक : 20 फरवरी 1970, स्थान : लाक्षागृह बरनावा

५. साधक 28 मार्च 1973

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व के समान जिन वेद मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहां परम्परा से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता–परमात्मा की आभाएं निहित रहती हैं। क्योंकि जितना भी यह संसार हमें दृष्टिपात होता है अथवा हो रहा है सर्वत्र इस चेतना का मूल कारण एकाकी ब्रह्मा माना गया है। हम उस परब्रह्म परमात्मा की आराधना करने में सदैव तत्पर रहें। मानव का इस संसार में आने का यदि कोई उद्देश्य है तो वह एक ही उद्देश्य है कि जिस प्रतिभा से हम ध्रुव–गति (नीच गति वाले) बन गए, पुनः से उस प्रतिभा को लाने के लिए हमें ऊर्ध्व बनना

है। विचार विनिमय क्या? कि हम अपने को ऊर्ध्व–गति वाला चाहते हैं। कोई मानव अपने को निम्न गति नहीं चाहता। यही चाहता रहता है कि मेरी गति ऊर्ध्व होनी चाहिए। मैं लोक–लोकान्तरों का यात्री बनूं। मेरी योग में विशाल गति होनी चाहिए।

अहिंसा

यहाँ वेद का ऋषि कहता है, यौगिक ऋषि कहता है कि जो मानव **साधना** में परणित होना चाहता है। साधना का पथ दर्शन करना चाहता है। मानव सब से प्रथम **अहिंसा** को अपनाता है। अहिंसा का अभिप्राय क्या? कि हम अहिंसा का अध्ययन करने वाले बनें परन्तु अहिंसा का अध्ययन क्या है? बेटा! हमें इसको विचारना है। अहिंसा का जो प्रादुर्भाव होता है, अहिंसा का जो प्रारम्भ होता है, वह मानव के हृदय से हुआ करता है। इसलिए यौगिक ऋषियों ने कहा है कि मानव को **अपने हृदय को स्वच्छ, निर्मल और पवित्र बनाना है।** परन्तु हृदय कैसे पवित्र होता है? हृदय पवित्र उस काल में होता है जब मन पवित्र हो जाता है। मन कैसे पवित्र होता है? मन उस काल में पवित्र होता है जब–मन का शोधन किया जाए। मन के ऊपर अध्ययन किया जाए और उसकी विभाजन क्रिया के ऊपर हमारा अधिपत्य होना चाहिए। अब हम मन की क्रियाओं के ऊपर अधिपत्य करने के लिए चले हैं। बेटा! मन के ऊपर अधिपत्य करना है तो सब से प्रथम हमें अहिंसा को अपनाना है। और अहिंसा उसे कहा जाता है जो मानव के मन, कर्म, वचन में भी अशुद्धता न आए। जब मानव के मन, कर्म, वचन में स्वच्छता आ जाएगी, त्रिविध रूप में जब पवित्रता आ जाएगी तो हृदय बेटा! स्वतः पवित्र हो जाता है। हृदय जब पवित्र होता है, जब मन की आभा के ऊपर हमारा अध्ययन होता है। मन गति और विभाजन करता है। संसार में जितना भी विभाजन तुम्हें प्रतीत हो रहा है चाहे वह मानव के मनुष्यत्व में हो चाहे वह पृथ्वी के गर्भ में हों, चाहे वह लोक–लोकान्तरों में भी क्यों न हो। वह जो विभाजन हमें दृष्टिपात आता है वह केवल एक मन का ही आरोपण (कार्य) माना गया है। क्योंकि मन ही विभाजन करता है। एक मेरी प्यारी माता अपने कुटुम्ब का परिचय देती है, एक मानव अपने गृह का परिचय देता है। तो यह विभाजन क्रिया आई। मानो यह मेरी माता है, यह पुत्री है, यह पत्नी है, यह विधाता हैं। तो मानो वह जो विभाजन क्रिया आई वह केवल मन के ही कारण आती है।

गति करने वाली प्राणों में जो शक्ति है, आज प्राण की शक्तियों का विभाजन होता रहता है। मैंने पुरातन काल में कई बार कहा है कि संसार को यदि जानना है तो मन की गति को हमें ऊर्ध्व बनाना होगा और उसको स्थिर करना होगा। मन की गति स्थिर हुए बिना मानव योग सिद्ध नहीं बन सकता। संसार में अनुसन्धान वेत्ताओं ने अनुसन्धान भी किया है और होता रहा है। परम्परा से अनुसन्धान होता रहा है। अपने पूज्यपाद गुरुओं और ऐसा ही अनेक ऋषियों का तथा महर्षि प्रवाण आदि का जीवन प्राप्त होता है। तो ऋषियों के उन वाक्यों से सिद्ध होता है बेटा! कि उनका जीवन कितना महान् था? और वे कितने अनुसन्धान–वेत्ता थे? वे प्रत्येक आभा पर अपना नियन्त्रण करते रहते थे।

इन्द्रियों का साकल्य

मैंने बहुत पुरातन काल में कहा है कि **आत्मा का जो भोजन है वह नेत्रों से प्राप्त होता है, जो घ्राण के द्वारा प्राप्त होता है, जो श्रोत के द्वारा प्राप्त होता है।** जैसे हमारे घ्राण के द्वारा परमाणुवाद आता है जब हमारा हृदय स्वच्छ होता है, मन पवित्र होता है तो इस वायुमण्डल में से सुन्दर परमाणु आता है और वह परमाणु हृदय को ऊर्ध्व बनाने वाला होता है। मन्द्र सुगन्ध के द्वारा आता है। इसी प्रकार रूप की या वर्ण की प्रतिभा, आभा केवल नेत्रों के द्वार से आती है और शब्दों की आभा श्रोत्रों के द्वारा आती है। तो हम श्रोत्रों और नेत्रों, दोनों पर विचारें दोनों के ऊपर अपना संयम करना है। जिसमें रजोगुणी, तमोगुणी वासना के कारण मानव इस संसार में पतित्त हो जाता है और मानव अपने ऊंचे स्वरूप को अपने में समाप्त कर देता है।

विचार विनिमय यह कि आज हम उस आभा को जानना चाहते हैं जिस आभा के द्वारा हम योग सिद्ध होते हैं, हमारा यौगिक क्षेत्र ऊंचा बनता है। मुनिवरो! यह तो मैंने कुछ संक्षिप्त साधना की चर्चा प्रकट की कि अपनी

इन्द्रियों के ऊपर हमें अध्ययन करना है। अब मन को स्वच्छ बनाना है। 'मन उस काल में पवित्र होगा, जब अन्न पवित्र होता है।'' मुझे स्मरण है बेटा! मुझे लाखों वर्षों का साहित्य जब स्मरण आता है तो विचार विनिमय यह कहता है कि उन ऋषियों का जीवन कैसा महान् और पवित्र था। मुझे बेटा! महर्षि शाण्डिल्य मुनि महाराज का जीवन स्मरण आता है। एक समय शाण्डिल्य मुनि के द्वारा महर्षि मुग्दल मुनि का गमन हुआ और महर्षि मुग्दल जी ने यह कहा कि महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ कि हम योग में प्रवीण होना चाहते हैं। योग की गति में हम योगेश्वर बनना चाहते हैं। उस समय महर्षि शाण्डिल्य मुनि ने कहा कि मैं इसका अभ्यास कर रहा हूं। परन्तु वह अभ्यास क्या? उनका निद्यासत्र चलता रहता था। निद्यासत्र उसे कहते हैं जो शारीरिक विज्ञान है। जो प्रत्येक इन्द्रियों की आभा का विज्ञान है। उस आभा का हमें साकल्य बनाना है। साकल्य किसे कहते है? बेटा! सामग्री को साकल्य कहा जाता है। सामग्री किसे कहते हैं? बेटा! सामग्री को साकल्य कहा जाता है। सामग्री किसे कहते हैं? नाना प्रकार की औषधियों, नाना प्रकार का विषय जहां एकत्रित हो जाता है। और सामग्री की हमें आहुति देनी है, हुत करना है तो कहां करेंगे? तो यहां ऋषि कहते हैं **''हृदयाणि गच्छम् ब्रह्मव्यापः योग भ्रवे अचि''** तो महर्षि शाडिल्य जी ने कहा हे मुग्दल! मैं आज उस साकल्य को मन्थन कर रहा हूँ। उनका फेन बनाना चाहता हूँ। जिस फेन के द्वारा मैं अपने शत्रु को विजय कर सकूं। तो बेटा! उस समय शाण्डिल्य मुनि महाराज ने ऐसा कहा कि इन्द्रियों का साकल्य अथवा सामग्री एकत्रित करके उसे हमें हृदयरूपी जो यज्ञवेदी बनी हुई है। हृदयरूपी जो दम्य अहंकार की अग्नि प्रदीप्त हो रही है, हमें उस **साकल्य को ज्ञान रूपी अग्नि में परणित कर देना है।** और उसमें हमें स्वाहा कर देना है। तो विचार विनिमय यह कि उसमें जब हम स्वाहा कर देते हैं तो हमारा जीवन निर्मल और पवित्र बन जाता है। तो मुनिवरो! देखो संसार में मानव के आने का जो उद्देश्य है वह वास्तव में पूर्ण हो जाता है। उस आभा में हम रमण करने लगते हैं।

पवित्र–अन्न

तो मेरे प्यारे! आज मैं उच्चारण कर रहा था कि अन्न पवित्र होना चाहिए। अन्न से आज जो योगी बनना चाहता है, यौगिक क्षेत्र में जाना चाहता है। उस अन्न को प्राप्त करना है जिस अन्न पर किसी का अधिकार नहीं होता। एक समय बेटा। महर्षि भृगु मुनि महाराज जब तप करने लगे तो उस समय प्रवाण ऋषि ने एक वाक्य कहा कि महाराज। आप तप कर रहे हैं। तप कैसे होता है? तप का मूल क्या है? उन्होंने कहा **''तप का मूल मन है और मन का मूल अन्न है।''** आज मुझे अन्न को प्राप्त करना है। तो मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! महर्षि भृगुजी ने लगभग 101 वर्ष तक तप किया। और वह तप कैसा था? मन को शोधन करने वाला। वह वनस्पतियों का आहार करते थे। वह उन वनस्पतियों का पान करते थे। जिस पर किसी का अधिकार नहीं होता था। ''सेलखण्डा'' ''अस्वाति'' और ''शंख भूमि'' इन तीनों औषधियों का पान करते थे। जिससे मुनिवरो! उनके रक्त में जो दुषितपन नष्ट होकर विचारों में, तरंगों में ओत प्रोत हो करके उनका योग **सिद्ध आत्मा** हो गया।

योगी

हम योगी किसे कहते हैं? योगी उसे कहा जाता है ''जो मन और प्राण दोनों का निरोध करना जानता है।'' मानो दोनों को एक स्थली पर स्थिर कर देता है। क्योंकि यह जो ब्रह्माण्ड है यह प्राण और मन की गति से ही गतिमान हो रहा है। इसमें वस्तु ही दो हैं। मानो एक विभाजन होने वाला और एक विभाजन करने वाला। तो मन तो विभाजन करता है और प्राण का विभाजन होता है तो यह जो सर्व ब्रह्माण्ड है—चाहे वह पृथ्वी मंडल हो, चाहे वह सूर्य हो, चाहे चन्द्रमा हो, कोई भी लोक लोकान्तर क्यों न हो। उनमें जो विभाजन—वाद दृष्टिपात आता है वह मन और प्राण के कारण ही प्रतीत होता है। यह जो भिन्न भिन्न जगत प्रतीत हो रहा है। मन और प्राण जब एक स्थान पर स्थिर हो जाते हैं। एक स्थान पर एकत्र हो जाते हैं उस समय मुनिवरो। यह जो हृदय है यह जो मानव की हृदय रूपी गुफा है। इसमें मुनिवरो! संर्वत्र ब्रह्माण्ड का चित्रण होना प्रारम्भ हो जाता है। और वह योगी एक स्थली पर विराजमान हो करके मन और प्राण को स्थिर करने वाला प्राणी इस ब्रह्माण्ड को अपने में ही दृष्टिपात करता है।

साधना क्या है? मानो यह सब वस्तु कैसे पवित्र होती हैं? जैसा बेटा! मैंने पुरातन काल में कहा है कि आज मानव यौगिक बनना चाहता है। योग का मार्ग ऐसा भयंकर मार्ग नहीं है। परन्तु वह मार्ग केवल परिवर्तन होना है। **मानव का जीवन परिवर्तन करने से ही योग की प्राप्ति होती है।** आज हमें परिवर्तनशील बनना हैं तो मन को स्थिर करने का प्रयास करो। जैसा महर्षि पतञ्जलि जी ने सबसे प्रथम अनुशासन के लिए कहा है।

सत्य

मैंने बेटा! सबसे प्रथम शब्दों में अहिंसा की घोषणा की है अहिंसा के बाद **सत्** की घोषणा की है। सत् किसे कहते हैं। बेटा! सत् को विचारना हैं। ऋषियों ने तो यह कहा है, सत्य को उच्चारण करने वाले पुरूषों ने कहा है कि सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही जगत है। तो हमे सत्य को विचारना है। सत्य का कदापि भी अभाव नहीं होता। अहिंसा के पश्चात सत्य आता है। सत्य क्यों आता है? क्योंकि अहिंसा सिद्ध होने पर **सत्यं स्वतः** ही आ जाता है। सत्य वह है जिसमें निस्वार्थता होनी चाहिए। वाक्य उच्चारण करता है परन्तु वह सत्य इस प्रकार का हो कि सत्य में कोई रहस्य होना चाहिए। मानो वह सत्य कभी असत्यता में परणित हो जाता है। जिस सत्य के उच्चारण करने से कोई लाभ न हो। मानो उसमें अपमान हो। ऐसे सत्य के उच्चारण करने से अपमान होता है। वह भी सत्य मानव को असत्यता में परणित करने वाला होता है। तो हमें सत्य को सिद्ध करना है। सत्य क्या है? तो ऋषि कहते हैं कि **'सत्यं ब्रह्मः यापक प्रवेः''।** अर्थात सत्य ही ब्रह्म है जो प्रकृति के कण–कण में व्याप्त हो रहा है। वहीं सत्य माना गया है।

अस्तेय

तो बेटा! मानव के जीवन में तृतीय लक्ष्य **अस्तेय** आता है कि हम मन, कर्म और वचन से मिथ्या भी न हों। मन–कर्म–वचन हमारा एक तुल्य होना चाहिए। मेरे प्यारे! हम स्वप्न में भी किसी प्रकार की अशुद्ध कल्पना न करें। उसको मुनिवरो! अस्तेय कहा जाता है। इसके पश्चात हम विचारते रहते हैं कि हमारा जीवन उस यौगिक क्षेत्र में रमण करने वाला हो जहां हम संसार की विभाजनवाद की क्रिया को विचार सकें। एक वैज्ञानिक है। मुनिवरो! वह वैज्ञानिक यह विचारता रहता है कि मुझे परमाणुओं को एकत्रित करना है। उन परमाणुओं का सन्निधान करना है। जब वह परमाणुओं का सन्निधान करना प्रारम्भ करता है तो मुनिवरो! उसके मन और कर्म दोनों ही उसमे समन्वय रहते हैं। वह एक उपग्रह बनाता है। मानो वह मंगल की यात्रा करने वाले यान का निर्माण करता है। वह निर्माण करता हुआ जब वह निर्माणवेत्ता ने जिस लिए बनाया उस पर जाने के पश्चात उसके हृदय में हर्ष ध्वनि प्रारम्भ हो जाती है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! विचार विनिमय यह कि आज हम अपनी आभा को उस क्षेत्र में जहां कि हम अपने विचार को सुदृढ़ बना सकें। हमारे हृदय में शान्ति की स्थापना हो सके। प्रत्येक मानव शान्ति चाहता है। ऋषि–मुनि भी शान्ति चाहते हैं। देवात्मा भी शान्ति चाहते हैं। शान्ति का अभिप्राय यह है कि "जहां स्थिर हो जाते हैं उसी का नाम शान्ति माना गया है।" तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम यह विचार विनिमय करें। हमारा वेद का ऋषि क्या कहता है? वेद का ऋषि कहता है कि हमें गुण और गुणी दोनों को विचारना चाहिए। क्योंकि गुण से गुणी पृथक नहीं होता। इसीलिए आत्मा और मन और प्राण तीनों को हमें मूलाधार से, हृदय से, नाभि से कण्ठ से, मानो त्रिवेणी से और ब्रह्मरन्ध्र में ले जाना है। जहां सूक्ष्म धाराओं की प्रतिभा आती रहती है। उन सूक्ष्म धाराओं की प्रतिभा मुनिवरो! नाना प्रकार की आभाओं से उन का प्रायः सम्बन्ध होता है। तो विचार विनिमय यह कि आज हम मुनिवरो! अपनी उस आभा को विचार विनिमय करने वाले बनें, जिन आभाओं के सम्बन्ध में हमारा दर्शन, हमारी मानवता, हमारा जीवन, जन–जीवन बेटा! मन के ऊपर स्थित होता चला जाए। और हम यह जान जाए कि हमारा वास्तविक स्वरूप क्या है? तो बेटा! जब हम यहीं नहीं जानते कि हमारे शरीर में कितनी नाड़ियां हैं? कितने चक्र है? कितना रक्त प्रवाह माना गया है? जब हम अपने को साक्षात्कार करते हैं तो हमारा योग सिद्ध हो

जाता है। अपने को साक्षात्कार साधना से किया जाता है और **साधना उस काल में होती है जहां अन्न पवित्र होता है।**

ऋत् और सत्

मुझे स्मरण आता रहता है जिस समय बेटा! महर्षि भृगु जब विद्यालय से आए तो उनके पिता महात्मा वरुण ने कहा, क्या तुम विद्या का अध्ययन कर आए हो? उन्होंने कहा हां भगवन! मैंने सर्व–विद्याओं का अध्ययन कर लिया है। उस समय ऋषि वरुण ने कहा, हे पुत्र! मैं यह जानना चाहता हूँ कि ऋत् और सत् किसे कहा जाता है? उन्होंने कहा भगवन्! मैंने तो इसका अध्ययन नहीं किया। तो वरुण ने कहा हे गौतम! तो तुमने जाना क्या है? उन्होंने कहा भगवन! वास्तव में मैंने नहीं जाना। मुझे इसका निर्णय कराइए। तो मेरे प्यारे! अब ऋत् और सत् का निर्णय करने के लिए मुनिवरो! पिता के चरणों मे ब्रह्मचारी ओत प्रोत हो गया और कहा कि हे प्रभु! मुझे प्रतीत है कि अन्न से ही मानव की स्मरण शक्ति जागरूक रहती है। इसी अन्न से मन की आभा आती है। क्योंकि जितना भी स्मरण शक्ति का केन्द्र है वह मन माना गया है। इसीलिए आज तुम सबसे प्रथम यह विचारो। तुम्हारा जीवन इस में संलग्नता में गतिशील होना चाहिए कि 'मैं वास्तव में ऋत् को जानना चाहता हूँ और इस मन की आभा को जानना चाहता हूं।

उन्होंने कहा तुम 15 दिवस तक अन्न को त्याग दो। उन्होंने बेटा! अन्न को त्यागा। केवल जल का पान करते रहे। प्राण गति करता रहा। परन्तु मन की जो स्मरण शक्ति थी वह समाप्त होने लगी। जब 15 दिवस हो गए तो मुनिवरो देखो गौतम के जीवन में ह्रास आ गया। स्मरण शक्ति समाप्त होने लगी। उस समय पिता वरुण ने कहा ब्रह्मचारी! अब तुम अन्न का पान करो। उन्होंने बेटा! अन्न का पान करना प्रारम्भ किया। अब शनैः–शनैः स्मरण शक्ति जागरूक होने लगी।

महात्मा वरुण ने कहा, अब जल का पान न करो। उन्होंने बेटा! तब जल का पान नहीं किया। परन्तु मन के द्वारा स्मरण शक्ति तो ज्यों की त्यों बनी रही। परन्तु जल के प्राप्त न होने पर मुनिवरो! प्राण की गति धीमी हो गई। जब प्राण की गति धीमी हो गई। तो क्रियात्मक होने के पश्चात, 15 दिवस के पश्चात प्राण की गति धीमी होने लगी और ऋषि से बालक ने कहा कि महाराज! मेरी तो गति धीमी बन गई है। उन्होंने कहा तुम शनैः शनैः जल का पान करो। अब मुनिवरो! उन्होंने जल का पान करना प्रारम्भ किया। तो कहा जाता है कि पुनः वह गति प्रारम्भ हो गई। तो परिणाम यह "संसार में दो ही वस्तु ऋत और सत कहलाती है" जिसके कारण स्मरणशक्ति जागरुक रहती है। जिसके द्वारा प्रणशक्ति अपना सुचारु रूप से कार्य करती है चाहे वह वसुन्धरा के गर्भ में हो, लोक लोकान्तरों के गर्भ में हो।

बेटा मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय सुकेतु ऋषि महाराज के द्वार महर्षि स्वाति ऋषि महाराज का गमन हुआ। स्वाति ऋषि ने कहा कि महाराज! आपका चित प्रसन्न है? उन्होंने संकेत से कहा, भगवन मैंने श्रवण किया है कि तुम स्वाति–मंगल की यात्रा यानों के द्वारा कर लेते हो। उन्होंने कहा, हां मैंने महर्षि प्रवाण जी से विज्ञान को जाना है। और विज्ञान की गति के आधार पर मंगल लोक की मैं यात्रा करता हूँ। उन्होंने कहा, मंगल में कौन सा तत्व प्रधान माना गया है। तो ऋषि ने कहा कि वहां पार्थिव तत्व प्रधान है। क्योंकि पार्थिव प्राणी रहते हैं। वहां का विज्ञान, वहां की प्रतिभा इस पृथ्वी मंडल से कई गुना ऊंची मानी गई है। तो विचार विनिमय क्या? कि लोक लोकान्तरों में भी प्रायः साधना का मूल कारण चलता रहता है। धर्म और मानवता के आधार पर धर्म की विवेचना करते हुए सुकेतु ऋषि ने कहा महाराज! किसी भी लोक में जाओ धर्म एक माना गया है। धर्म कहते हैं यौगिक क्षेत्र को 'जो इन्द्रियों का विषय है, उनको संयम में लाने का नाम धर्म कहा गया है।" मुनिवरो! वह धर्म जैसे पृथ्वी में प्राप्त होता है ऐसे ही चन्द्र मण्डल में भी, बृहस्पति मण्डल तथा अन्य लोकों में भी प्रायः सामान्य रूप से प्राप्त होता है। परिणाम क्या? कि सत्य धर्म का मूल है, धर्म की आभा है। वही मुनिवरो! एक हमारे यहां स्त्रोत माना गया है। जिसके ऊपर हमें प्रायः अध्ययन करना है।

मन और प्राण की रचना

एक योगी जब मंगल में गति करता है। प्रायः वैज्ञानिक यह कहते हैं कि सूर्य मण्डल में जाने से मानव समाप्त हो जाता है। वहां अग्नि है। तो बेटा! विचारा जाए कि यह जो आत्मा है इस को अग्नि जब नष्ट नहीं कर सकती। अन्तःकरण को भी अग्नि नष्ट नहीं कर सकती। जब मुनिवरो! मन को भी अग्नि भस्म नहीं कर सकता। मन अग्नि में भी विराजमान रहता है। यह जो अग्नि का विमाजनवाद होता है यह मन के ही कारण तो होता है। प्राण के द्वारा ही तो विभाजन होता है और मन विभाजन करता है। तो परिणाम क्या? कि योगी का जब मन अन्तःकरण का एक यन्त्र बन जाता है तो मुनिवरो! देखो वह सूर्य मण्डल गति करता है। सूर्य मण्डल क्या है? बेटा! एक लोक है। जैसा मैंने पुरातन काल में कहा। वेद का ऋषि कहता है कि मानो सूर्य केवल अग्नि की प्रधानता है क्योंकि वहां जो शीतल पार्थिव तत्व प्रधान लोक है। सूर्य उनको तपाने का कार्य करता है। परन्तु वह मन को नहीं तपा सकता। क्योंकि मन सूर्य में विराजमान् है। सूर्य में भी, चन्द्रमां में भी, जितना भी यह ब्रह्माण्ड है प्रकृति का चक्र है, इन सब में मन ही कार्य करता है। मन किसे कहते हैं? मन प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तत्व माना गया है।

यहां जब वरुण ने महात्मा गौतम को यह उपदेश दिया। गौतम! आज तुम्हें लोक लोकान्तरों पर जाना है। सूक्ष्म सी विद्या को पान करने से ही तुम्हें केवल अभिमान हो गया। परन्तु ज्ञान और सत्य तो ऐसी आभा है जो मानव को निर्मल बनाती है, निरभिमान बनाती है। वह मानव को यौगिक क्षेत्र में ले जाती है और धर्मज्ञ बना देती है। मेरे प्यारे। ऋषि का यह वाक्य जब महर्षि गौतम ने श्रवण किया। तो सुकेतु मुनि महाराज का उपदेश जो प्रवाण से उन्होंने प्राप्त किया था। उन्होंने कहा कि यह संसार मानो एक प्रकार की आभा है। इसमें लोक लोकान्तर हैं। परन्तु इस मन को अग्नि समाप्त नहीं कर सकती और प्राण को भी नहीं कर सकती। क्योंकि ''यदि प्राण अग्नि में नहीं रहेगा तो अग्नि, अग्नि नहीं रहेगी। अग्नि क्रिया से शून्य हो जायेगी। वायु में प्राण नहीं रहेगा तो वायु स्थिर हो कर निष्क्रिय बन जाएगी।'' इसी प्रकार बेटा! सर्वत्र मन और प्राण की एक रचना है। मानो वह सर्वत्र ओत प्रोत है। तो इसी के द्वारा लोक लोकान्तरों का हमें विभाजन प्रतीत होता है। और ऐसे–ऐसे अपने आंगन में वह मण्डल रमण करते हैं, गति करते हैं कि एक दूसरे से मिलान नहीं। वाह रे मेरे प्यारे प्रभु! तू कितना वैज्ञानिक है। तेरा विज्ञान कितना नितान्त (असाधारण) है? कितना गम्भीर है? मानव तो विचारता ही रहता है अल्पज्ञता होने के कारण। एक दूसरा लोक एक दूसरा मिलान नहीं कर पाता। पर जब यह प्रलय काल आता तो सबसे प्रथम मण्डलों का प्राण और मन एक आभा में परणित होता हुआ अपने में रमण करता रहता हैं। तो मुनिवरो! विचार विनिमय क्या? सुकेता मुनि ने कहा है आज तुम्हे यह प्रतीत हो गया होगा कि धर्म सामान्य रहता है। इसीलिए जैसे मंगल मण्डल की मैंने यात्रा की है उस मंगल में भी धर्म है। परन्तु उसमें पार्थिव धर्म है। विचारक धर्म है। इसी प्रकार प्रत्येक लोक लोकान्तरों में यह वाक्य सुनते हैं कि वहां तत्त्व की प्रधानता भिन्न भिन्न रहती है। क्योंकि **जिस मंडल में जो तत्व प्रधान है, उसी तत्व की प्रधानता वाला प्राणी रमण करता है।** तो मेरे प्यारे ऋषिवर! सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक अनन्तता में परणित रहता है। आज मैं लोक लोकान्तरों के ऊपर अपना विचार देना नहीं चाहता था।

दार्शनिक

विचार विनिमय क्या था? कि आज मानव को साधक बनना चाहिए। योगी बनना चाहिए। जिन यौगिक उद्देश्यों को पान करके हम लोक लोकान्तरों की यात्रा करते हैं। उन पर हमारा गमन होता है। हमें वह अध्ययन करना है। हमें उसके ऊपर विचारशील बनना है। मेरे प्यारे! आज मैं अधिक विवेचना तो देने आया ही नहीं हूं। केवल मैं तो यह उच्चारण करने आया हूँ कि पुरातन काल में ऋषि बेटा! कैसे अपने जीवन का अध्ययन करते थे। मुझे स्मरण है एक समय महर्षि पिप्पलाद, महर्षि रेवक मुनि महाराज के द्वार पर विराजमान हुए। तो महर्षि पिप्पलाद मुनि ने कहा प्रभु! मैं साधक बनना चाहता हूँ। उन्होंने कहा बहुत सुन्दर। तो उन्होंने नाना प्रकार की वनस्पतियों का पान कराया। जिस पर किसी का अधिकार नही था। पिप्पलाद मुनि ने 12 वर्ष तक केवल बट के

पञ्चांग का पान किया और उससे निर्वाह किया। बट वृक्ष के पञ्चांग से उनका जीवन सुन्दर बना। उनका मस्तिष्क दार्शनिक बन गया। दार्शनिक का अभिप्राय यह कि हमारा भोजन अथवा अन्न जितना ऊंचा होगा जिस पर किसी का अधिकार नहीं होगा। तो ऐसे अन्न से स्वतन्त्र मस्तिष्क बनता है। अन्न पाप का वह होता है जिस अन्न में जो मानव द्रव्य का स्वामी बने और द्रव्य को एकत्रित करने में शंका, लज्जा उत्पन्न हो, भय उत्पन्न हो वह जो भय का अन्न है वही जो पान करता है, मानव के हृदय को भी भयभीत बना देता है। तो विचार विनिमय यह कि हमारे ऋषि मुनि भयंकर वनों में, पर्वतों की कन्दराओं में उस अन्न को पान करते थे। वह दार्शनिक कहलाते हैं।

दर्शन

दर्शन किसे कहते हैं? दर्शन कहते हैं यह हमारा जो शरीर है, इस की प्रत्येक आभा को जानने का नाम 'दर्शन' है। मुनिवरो! इन्द्रियों के ऊपर संयम करने का नाम और संयमी पुरुष है जो उन तरंगों को स्थिर करने का नाम 'साधना' है, **'योग'** है। मुनिवरो! संसार में बिना तरंगों को स्थिर किए योग सिद्ध नहीं बन पाता। विचार विनिमय यह कि हम वाणी के ऊपर अध्ययन करते हैं। नेत्रों के ऊपर अध्ययन करते हैं। श्रोत्रों के ऊपर अध्ययन करते हैं। त्वचा के ऊपर अध्ययन करते हैं। प्रत्येक इन्द्रिय के ऊपर जब हमारा अध्ययन इतना ऊर्ध्व गति में चला जाता है कि हमारी प्रत्येक इन्द्रिय का विषय मन में स्थित हो जाता है। मन और प्राण में स्थिर हो जाता है और मन और प्राण बेटा! आत्मा में स्थित हो जाते है। मुनिवरो! तब आत्मा अपने प्रभु का साक्षात्कार कर लेता है। वह प्रभु का आध्यात्मिक विज्ञान और दर्शन कहलाता है। आज हमें मानवीय दर्शन करना है जीवन को ऊंचा बनाना है। बेटा! मैं अधिक विवेचना तो नहीं देने आया हूं। केवल मैं यह उच्चारण करने आया हूँ कि हम अपने प्यारे प्रभु! के आंगन में रमन करते रहें। प्रभु की आभा को विचारते रहें। क्योंकि यह जो जितना भी जगत् है यह सब प्रभु की आभा है।

धर्म को विचारा जाए। धर्म रूढ़ि को नहीं कहते। **धर्म कहते हैं जो ईश्वर में हमें समाहित करा देता है।** तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का विचार क्या कि हम वेदों का अध्ययन करते रहें। जीवन को ऊंचा बनाते रहें। और अपने जीवन में साधना को ऊंचा बनाएं। साधना में सबसे प्रथम अहिंसा आता है, सत् आता है। अस्तेय आता है। ब्रह्मचर्य आता है हम जब अहिंसा, सत्, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पर विचार विनिमय करते है, अध्ययन करते हैं तो हम **योग सिद्ध आत्मा** हो जाते हैं। हमारा जीवन सर्वत्र बन जाता है। हमें यहीं विचारना है। इसी के ऊपर अध्ययन करना है। यही हमारा **मानवीय दर्शन है।** यह है बेटा! आज का वाक्य। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं फिर प्रकट करेंगे।

अध्ययनशील

आज का विचार–विनिमय क्या? आज का वेद का ऋषि क्या कह रहा है? ''हम उस परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए परमात्मा की आभा को जानते हए हम इस संसार सागर से पार हो जाए।'' जो यह संसार हमें मान और अपमान वाला दृष्टिपात आता है। ऋषि तो यह कहते हैं कि यह मान–अपमान भी मुनिवरो! संसार में आवागमन के चक्कर में लाते हैं। मानव को मान को दृष्टिपात करके हर्षित नहीं हो जाना चाहिए और अपमान को पान करके निराशा नहीं आनी चाहिए। क्योंकि दोनों को ही त्याग देना चाहिए। जो साधक बनना चाहता है। इसीलिए मुनिवरो! मान अपमान में सामान्य रहना, विचार शीलता में रमण करना, विचार अधिक करना, कैसा विचार? एकान्त विराजमान हो करे प्रभु की आभा को विचारना। ''हे प्रभु! तू क्या है? कैसा विचित्र है? तेरी जब हम रचना को दृष्टिपात करते हैं। लोक लोकान्तरों का तारा मण्डल को, नाना प्रकार की वनस्पतियों का अध्ययन करते हैं। तो बेटा! हमारा हृदय प्रभु! भी नम्रता में रहता है। ऐसे ही मानव का जब मिलान हो जाता है, तो नम्रमय जीवन बन जाता है। इसीलिए मानव को नम्र बनना है। इतना सुन्दर बनना है जैसे पुष्प वाटिका में पुष्प सुगन्धि देता है। मानो हमें विचारो की सुगन्धि में परणित होना चाहिए। मेरे प्यारे वाटिका में सुगन्धि देने वाला जो

पुष्प है परमात्मा ने उसका निर्माण किया है। उस पर जब हम अध्ययन करते हैं। इस सुगन्धि का मूल कारण क्या है? तो प्रभु ही दृष्टिपात आता है। आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! मानव जब अपने पर अध्ययन करना प्रारम्भ कर देता है तो अध्ययन के पश्चात प्रभु को आभा ही दृष्टिपात आती है। तो विचार विनिमय यह कि आज हम बेटा! अपने **जीवन में अध्ययनशील बनें।**

कैसा अध्ययन? आज हम सूर्य का अध्ययन करना प्रारम्भ करते हैं इसकी किरणें कैसा कैसा कार्य करती हैं? पृथ्वी पर आती है। कहीं स्वर्ण का निर्माण करती है कहीं वनस्पतियों को तेज देकर के ऊंचा बनाती हैं। मानो इसका जो मूल स्रोत है वह चैतन्य देव हैं।

आज हम बेटा! जब अपनी प्रत्येक आभा को परमात्मा में स्थित कर देते हैं परमात्मा के गर्भ में हम रमण कर देते हैं तो मुनिवरो! जैसे प्रभु उदार हैं उसी प्रकार परमात्मा के हम आंगन में उदार बन करके, विवेकी बन करके प्रभु को प्राप्त हो जाते हैं। बेटा! यह आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। **आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा क्या? "हम साधक बनें। ऊंचे बनने का प्रयास करें। और दर्शन को विचारने वाले बनें।"** यह है बेटा! आज का वाक्य। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का वाक्य अब समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। अच्छा भगवन्। दिनाँक : 28 मार्च 1973, समय : रात्री 8 बजे स्थान : श्री राधा किशन टोडो कलकत्ता

६. साधना 22 सितम्बर 1973

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन–पाठन किया।

प्रभु की महत्ता

यह आत्मा तेरी अनुपम महत्ता में सदैव रमण करता रहता हैं। आपको नाना ऋषियों ने भिन्न–भिन्न रूपों से आपका विवेचन किया है। क्योंकि कि आप प्रातः काल की पवित्र अग्नि बन करके इस संसार को प्रकाशमान बनाते हैं। वह जो प्रकाश है जो इस संसार में ओत–प्रोत है, इस प्रकार का जो अनुपम भंडार है वह आपकी महत्ता है। आपकी ही महत्ता से प्रत्येक प्राणीमात्र क्रियाशील हो रहा है। यह सर्वत्र जगत् आपका हृदय है। आपके हृदय में, जिस प्रकार माता के गर्भ स्थल में बालक का अंग–प्रत्यंग बन जाता है अथवा निर्माण हो जाता है इसी प्रकार यह जो जगत् है यह सर्वत्र आपका हृदय है। क्योंकि आपके हृदय से इस संसार का निर्माण होता है और आपके हृदय में यह जगत व्यापक बन करके, संकुचित हो करके समाहित हो जाता है। हे प्रभु! हम आपकी महिमा का गुणगान तो नहीं गा सकेंगे क्योंकि आप तो अनन्त हैं। हमारी यह सूक्ष्म सी वाणी आपके गुणों का अनुवाद क्या कर सकती है क्योंकि वाणी में शब्द नहीं होते जितनी आपकी प्रशन्सा है, आपकी विचित्रता है। उस विचित्रता के लिये हम सदैव आपकी ही प्रतिभा, आपकी ही महत्ता पर त्याग देते हैं।

हे प्रभु! आचार्यजन यह कहा करते थे कि संसार में न करने से कुछ करना बहुत सुन्दर है। परन्तु जब हम आपकी प्रतिभा, आपकी महिमा का गुण गान गाने लगते हैं तो प्रभु! शरीर में हमारे कोई ऐसी इन्द्रिय नहीं है जो आपकी महिमा को अथवा आपकी रचना को और आपकी प्रतिभा को प्रकट न करती हो। आपकी महत्ता पर हमारी इन्द्रियां संकीर्ण हो जाती हैं।

हे प्रभु! हम तो सदैव यह कहा करते हैं, प्रभु! हमारा कल्याण करो। क्योंकि आपकी ही प्रतिभा से सृष्टि के प्रारम्भ में यह समिधा का स्फुलिंग आपके द्वार से उत्पन्न हुआ। हे प्रभु! आपका जो हम दिग्दर्शन करने लगते हैं, आपकी महत्ता को दृष्टिपात करने लगते हैं तो नेत्रों का प्रकाश, नेत्रों में ज्योति है वह आपकी महिमा को

दृष्टिपात करते–करते ओझल हो जाती है और प्रायः ऐसा प्रतीत होने लगता है कि परमपिता–परमात्मा की प्रतिभा तो इतनी अनन्त है कि नेत्रों की ज्योति मानो शान्त हो जाती है। परन्तु उसकी जो अनुपम ज्योति है वह ज्योति कदापि भी ऐसा नहीं कि हमसे ओझल हो जाए। हमारे नेत्र ही उस ज्योति को पान करने में असमर्थ हो जाते हैं। हे प्रभु! हम आपकी उस महत्ता को आपकी समिधा में ही देखकर पुलकितमय हो जाते हैं।

प्रभु से प्रार्थना

यह कहा जाता है कि ब्रह्मा जी के कमण्डलु से यह समिधा मानो यह प्रातःकाल की उषा उसी की आभा से आभाइत होती हैं। मानव कल्याण के लिए प्रभात में प्रातः की ऊषा को ले–करके जब हम अपने में प्रकाशक होते हैं, नेत्रो का प्रकाश नेत्रों को प्राप्त हो जाता है। जहां आत्मा के प्रकाश से प्रभु प्रकाशित होते हैं वहां आत्मा अपनी सहायता से आत्मा के प्रकाश से प्रकाश होता है और आनन्द के लिए सदैव प्रदीप्त रहता है और यह विचारता रहता है कि मैं आनन्द को पान करना चाहता हूँ। आनन्द की प्रतिभा में जाना चाहता हूँ। क्योंकि वह जो आत्मा सत्चित है वह आनन्द के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है और विचारता रहता है कि मैं अपने सुख के द्वार पहुंचू। हे प्रभु! आपको सखा कहते हैं। क्योंकि जब आपके गुणों का गुण–गान होने लगता है तो प्रभु! यह आत्मा तृप्त होता है। जहां आत्मा की सखा का गुणवादन नहीं होता वहां मानव कुछ समय तक उस प्रकृति के आवेशों भरे शब्दों को श्रवण करता रहता है। जिसके पश्चात् वह ऊब जाता है और ऐसा ऊब जाता है कि उसे वह वाक्य श्रवण करने में भी लज्जा आती है। तो प्रभु! हमारे ऊपर ऐसी अनुपम कृपा करो कि हम आपकी ही महिमा का गुणगान गाते रहें। आपके देवत्व को प्राप्त होते रहें। क्योंकि प्रातःकाल की जो अग्नि है यह अग्नि सदैव हमारे जीवन को प्रकाश देने वाली है। हमें मग्न बनाने वाली है।

प्रभु की महिमा

प्रातःकाल से सायंकाल तक मानव कार्य करता हुआ थकित हो जाता है। परन्तु जब रात्री में उस महामना देवी की गोद में परणित हो जाते हैं जैसे माता का प्रिय बालक क्षुधा से पीड़ित हुआ। माता उसे अपने कंठ में धारण कर लेती है। लोरियों का पान कराती है और उस बालक की क्षुधा शान्त हो जाती है। इसी प्रकार हम जब रात्रि की गोद में जाते हैं। कामधेनु की गोद में जाते हैं तो वह अपनी आनन्दमयी लोरियों का पान कराती हुई हमें विभोर कर देती है। नवीन बना देती है। बेटा! अब वह कहां चला गया अन्धकार जिस अन्धकार को हम लेकरके उषा की गोद में आये हैं। जैसे हम कार्य व्यस्त होकर थकित हो गये थे वह थकित होना कहां चला गया? उस माता ने अपने में ग्रहण कर लिया और माता ने वह अनुपम शक्ति हमें प्रदान कर दी जिस शक्ति को पान करके हमारा जीवन विभोर और नवीन बन जाता है।

मेरे प्यारे! प्रत्येक प्राणी को संसार में नवीन बनना है, नवीन बनता रहता है। मैं परमपिता–परमात्मा की उपासना करने नहीं आया हूँ क्योंकि परमात्मा तो अनन्त हैं। यह अनन्तता में रमण करने वाला है। परन्तु मन को विचित्र बनाने वाला प्रभु है। जब हम दर्शनों में जाते हैं, अपने पूज्य–पाद गुरुओं के द्वारा विराजमान होते तो प्रातः का के समय में यह कहा करते थे, हे पुत्रो! आओ और तुम प्रभु के गुण–गान गाओ। हम प्रभु के गुण–गान गाने के लिए तत्पर हो जाते उनका उपदेश प्रारम्भ हो जाता और यह कहा करते थे कि संसार में मानव को साधना शक्ति को प्राप्त करना है। ईश्वर का जो प्रिय भक्त होता है उसका संसार में कोई शत्रु नहीं मानो वह संसार का प्रिय बन जाता है, हम सब प्राणियों का भी वह बन जाता है। कैसा प्रिय बनता है कि उसके हृदय में, उसके मन में हिंसा नहीं आ पाती। क्योंकि वह विचार लेता है कि संसार में जो मन और प्राण जो जगत् में ओत–प्रोत हो रहा है यह हिसंक प्राणी में भी है। यह देवदूत में भी है। **"अहिंसा परमोधर्मः"** में भी हैं। इन दोनों की विचित्रता संसार को विचित्र बना रही है। यह विचार आता रहता है जो हिंसक प्राणी हिंसक नहीं रहता, वह देवदूत बन जाता है। अहिंसा में परणित हो जाता है।

प्रभु प्राप्ति का मार्ग

हम सदैव अपने आचार्य से कहा करते थे। प्रभु के निकट जाने का कोई मार्ग है तो वह क्या (कौन सा) है? तब उस समय पूज्य–पाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि (1) प्राण (2) अपान (3) उदान (4) समान (5) व्यान (6) नाग (7) देवदत्त (8) धनञ्जय (9) कूर्म (10) कृकल–दस प्राण कहलाते हैं। मानव शरीर में, इन दसों प्राणों को नियंत्रण में करने वाला मन कहलाया जाता है। मन और प्राण दोनों का समन्वय करना है। समन्वय करते हुए जो मन का व्यापार है, मन का इन्द्रियों का जो जगत् है। इन्द्रियों का जो व्यापार है इन इन्द्रियों के व्यापार का एक साकल्य बन जाता है और साकल्य बना करके हमें प्राण अपान को एकाग्र करके इनका समन्वय करते हुए **मन और प्राण दोनों के मिलान का नाम साधना कहलाई जाती है।**

आज कोई मानव संसार में साधक बनना चाहता है; साधना में रमण करना चाहता है तो **साधना कहते हैं मन और प्राण दोनों के मिलान को।** उसको हमारे यहां **योग** कहा जाता है। क्योंकि योग की परम्परा में हमारे यहां चित्त की तरंगे होती हैं, तरंगे इन्द्रियों का भावादेश होती हैं और वह जो इन्द्रियों का भावादेश है उस भावावेश को हम मन में सन्निधान करने वाले बनें। क्योंकि वह भी प्राण की ही क्रिया है। चित्त का जो एक स्थल है दूसरे स्थल में जाना मानो चित्त अपने स्थल से दूर हो जाना यह सब प्राण की प्रतिभा है और मन प्रकृति की वस्तु होने के नाते मन की प्रतिभा से यह ज्यादा हो जाता है और प्राणों का विभाजन होना प्रारम्भ हो जाता है। जब मन और प्राण दोनों का समन्वय कर देते हैं, दोनों का मिलान कर देते हैं तो **मन और प्राण, दोनों आत्मा के गुण कहलाये गए हैं। जिनको हम ज्ञान और प्रयत्न कहते हैं। क्योंकि "प्रयत्न प्राण का अधिपति है और ज्ञान मन का अधिपति है।"** जितना विभाजन वाद है वह विभाजन चाहे अन्तरिक्ष में हो रहा हो अथवा पृथ्वी में रसों का हो रहा है वह मन की ही क्रिया कहलाती है। आज जैसे पृथ्वी में नाना प्रकार के रस स्वादन प्राप्त होते हैं और नाना प्रकार का विभाजन तुम्हें दृष्टिपात होता है। जैसे वृक्षो में नाना प्रकार का रसास्वादन है उन रसों का विभाजन कौन करता है? बेटा! "इनका विभाजन करने वाला मन है और विभाजन होने वाला प्राण है।" यह मन सृष्टि के गर्भ में भी विराजमान रहता है। यह मन ही है जो मानव के हृदय में ओत–प्रोत रहता है और उसी मनस्तत्व की यह महा–गतियों में रमण करता रहता है। तो विचार यह कि यदि कोई मानव संसार में साधक बनना चाहता है, उसके लिए दर्शनों का अध्ययन करना, वेदों का अध्ययन करना यह भी प्रियतम है। परन्तु जो हमने अध्ययन किया है उस अध्ययन के ऊपर हम यदि अपने जीवन को क्रिया में लाने का प्रयत्न करते हैं, क्रिया में ला देते हैं तो वह **मानव की साधना** बन जाती है। संसार में वेद का ऋषि यह कहता है कि वेदों का उद्‌गान गाने से उनका व्याख्यान देने से और प्रतिभा में रमण करने से मानव कदापि ऊंचा नहीं बनता। परन्तु ऊंचा उस काल में बनता है जब जो हमने अध्ययन किया है उस अध्ययन को क्रिया में मन और प्राण दोनों का सन्निधान करने लगते हैं। तो हे मेरे पुत्र! वह अपना स्वतः कल्याण करने लगता है।

मुक्ति–आनन्द

मेरे प्यारे! आज प्रभु की आराधना कर रहे थे। प्रभु से हम क्या चाहते हैं? प्रभु से हम अपनी महत्ता नहीं चाहते, केवल यह चाहते हैं कि प्रभु हमारे ऊपर करुणा करता रहे, वह दयालु बना रहे, हमारे ऊपर दया करता रहे, हम सदैव दया ही चाहते रहते हैं। आज हम साधक बनें। प्रत्येक मानव प्राणायाम करता है मानो 1. प्राण 2. अपान 3. उदान और 4. समान को एकाग्र करने का प्रयास करते रहते हैं। वह क्यों किया जाता है? इससे हमारे जीवन की गति ऊर्ध्वा बन जाती है। **"मन को तुम्हें स्थिर करना है, मन से यदि संसार में शक्तिशाली वस्तु है तो वह प्राण है।" इसलिये मन को प्राण में सन्निधान करो, जब यह मन और प्राण दोनों का सन्निधान होता रहता तो आत्मा का जो गुण वह मानव को साक्षात्कार दृष्टिपात होता है और उसी से हम आनन्द का स्वादन करते हैं।** आनन्द कहां प्राप्त होता है? जब इस प्रकृति के बिखरे हुए परमाणुओं को एकाग्र कर लेते हैं और चेतना में रमण करना चाहते हैं तो मन और प्राण दोनों ही यह प्रकृति के आवेश (अंश) हैं, आत्मा के गुण कहलाते हैं। जैसे दो सूत्र होते हैं, इसी प्रकार ये भी दोनों माने जाते हैं। जब मन और प्राण दोनों का सन्निधान हो जाता है, ज्ञान

और प्रयत्न दोनों का सन्निधान हो जाता है तो वह आत्मा में समाहित हो करके उससे यह आत्मा मुक्ति में यह उस आनन्द को प्राप्त करता है जिसको आनन्द कहते हैं। आनन्द वहां प्राप्त होता है जहां मन को प्राण दोनों का सन्निधान हो जाता है और जिस आनन्द के लिए यह आत्मा पिपासु है। यह मानव नाना प्रकार के गुण गान गाता है। वह जो पिपासा है वह पिपासा वहां नहीं रहती। यह आत्मा आनन्द में रमण करता रहता है। वहां विभाजनवाद की क्रिया भी समाप्त हो जाती है और जो विभक्त होता है वे भी दोनों समाप्त हो जाते हैं। इस आत्मा को केवल एक आनन्द प्रतीत होने लगता है।

चार–पाद

विचारना यह है कि आज हम साधक बनना चाहते हैं। अतः इन्द्रियों का निग्रह करना अनिवार्य हैं। क्योंकि मानव को जो धर्म है मानव के चार कृति धर्म कहलाये जाते हैं। (1) सत्य (2) तपस्या (3) दान और (4) दया ये चार पाद कहलाये गए हैं। सबसे प्रथम सत्य आता है और द्वितीय तप आता है। **सत्य कहते हैं** जो प्रभु है वह सत्य है, आत्मा भी सत्य है, प्रकृति भी सत्य है परन्तु इनके स्वरूप को जान करके इनको वैसा ही उच्चारण करने का नाम सत्य माना जाता है। उसके पश्चात् तप है, **तप कहते हैं** जो मानो अपनी इन्द्रियों का निग्रह करता है, निग्रह करने वाला मानव तपस्वी कहलाता है। वह जो तपस्वी प्राणी है उस मानव के हृदय में दया तो स्वतः ही धर्म हो जाता है। दया आ जाती है।

दया

दया किसे कहते हैं? दया कहते हैं कि मानव अपने हृदय में करुणामय हो जाए। वह प्रभु के आनन्द में इतना विभोर हो जाए कि उसके लिए इस संसार में कोई वस्तु मिथ्या नहीं रहती। वह मानव यह विचारता है कि यह जो संसार है, प्राणी मात्र है यह अपने–अपने संस्कारों पर कटिबद्ध हो करके अपनी क्रीड़ा कर रहा है, नृत्य कर रहा है। जैसे सूर्य–चन्द्र इत्यादि अपने अपने आसन पर नृत्य कर रहे हैं। जगत् चल रहा है, इसी प्रकार यह प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या अपने अपने आंगन में नृत्य कर रहे हैं। उसको अच्छी प्रकार जानना। जान करके आगे का जो मार्ग है उसका नाम हमारे यहां दया कहलाया गया है। उसको दया कहते हैं जो ऊंची श्रेणी को चला गया है। वास्तव में निम्न श्रेणी की भी दया होती है मानो एक क्षुधा से पीड़ित है उसके ऊपर भी हमें दयालु बनना है। परन्तु जो प्रारम्भिक दया है उसे भी विचारना है।

दान का अभिप्राय क्या है? वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है कि हैं दानी बनना है। दान किसे कहते हैं? दानी वह मननशील प्राणी होता है, वह प्राणी कहलाता है क्योंकि हमारे यहां दान की मीमांसा करते हुए ऋषि–मुनियों ने यह कहा है कि हमारे द्वारा जो वस्तु हो उसका दान करो। यदि द्रव्य का सदुपयोग करोगे तो द्रव्य तुम्हारा सहायक बनेगा। द्रव्य तुम्हें मुक्ति तक पहुचाएगा। यदि तुम द्रव्य का दुरुपयोग करते रहोगे तो 'आदान' होगा वह। तुम्हें नारकिक बनाता रहेगा। इसलिए द्रव्य का सदुपयोग किया जाए। **सबसे प्रथम जो दान है वह याग करना है। याग किसे कहते हैं?** याग उसे कहा जाता है जैसे प्रभु की विवेचना में आता है जैसे हूत की विवेचना में भी आता है हूत कहते हैं देवताओं को परणित करना जैसे **धृत और साकल्य है अग्नि में परणित करने का नाम हूत कहलाता है,** वह हम देवताओं को प्रदान कर रहे हैं। देवताओं को क्या दे रहे हैं? उनका जो अधिकार है उन्हें प्रदान कर रहे हैं। मुनिवरो! यह न विचारो कि मैं इतना दानी हूँ। जो मानव यह विचारता रहता है कि मैं दानी हूँ। तो इसमें भी अभिमान की मात्रा उत्पन्न हो जाती है। यहां ऋषि कहते हैं अरे! यह तो मैं अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा हूँ। जैसे मुझे स्मरण है एक समय महाराजा अश्वपति जब प्रातः काल में याग करते थे तो वे तीन प्रकार का याग करते थे। वे हूत भी करते थे, वे प्रहूत भी करते और अपने राष्ट्र में जो एक दूसरे के ऋणी हो जाते थे उस ऋण से उऋण होने का प्रजा के लिए प्रयास करते थे। मेरे प्यारे! वह भी याग है। वह राष्ट्रीय याग कहलाया जाता है। उसको हम दान कहने लगें तो वह दान नहीं, याग है। हमारे यहां विज्ञान में परणित होना, विज्ञान में सहायक होना वह भी याग है। एक तपस्वी की सेवा करना, उस तपस्वी को

अन्न इत्यादि का पान कराना वह भी याग है। तो यहां दान ही याग में स्वीकार किया गया है। वह जो दान है वह दान मानव को दानी बना देता है। मुनिवरो! दान तप भी एक प्रकार से अभिमान में परणित माना गया है। मानव संसार में याग करने के लिए आया है, याग उसे करना चाहिए। परन्तु आत्म कल्याण के लिए याग कर रहा है। कहीं दूसरे संसार के लिए याग कर रहा है। कहीं क्षुधा से पीड़ितों का भोजन देने का याग कर रहा है। कहीं जो पक्षीगण हैं उनके भोजन का याग कर रहा है। ये सर्व–याग कहलाए जाते हैं। **ये कर्त्तव्य में आते हैं। ये दान नहीं।**

दान भी हमारे यहां आता है। एक स्थूल रूप में दान उच्चारण कर देते हैं। परन्तु विचारना यह कि हे मानव! तुम्हें दानी बनना है। क्योंकि धर्म के लिए चार पग माने जाते हैं उन पगों को तुम्हें विचारना है। दानी बनना है और दान क्या कि हमें याग करना है। जो मानव यह विचार लेता है कि मैं इतना दानी हूँ, मैं इतना कर्मठ हूँ तो वेद का ऋषि कहता है कि वे परमात्मा के राष्ट्र में अपने नहीं होंगे। इसकी (अभिमान की) अवहेलना करनी चाहिए। क्योंकि उसके हृदय में अभिमान आ गया है, वह मानव अपने आत्म कल्याण के मार्ग में बाधक बन रहा है। इसलिए उसे 'मैं' का प्रतिपादन अथवा में इतना प्रबल हो गया हूँ, मैंने इतना अध्ययन किया। अरे! तूने अध्ययन तो किया है। परन्तु यह नहीं जाना कि ''मैं'' हूँ क्या? मैं क्या वस्तु हूँ? जिसे ''मैं'' उच्चारण कर रहा हूँ। वह तो प्रकृति का वाची शब्द है। आज मैं ''मैं'' ही मैं उच्चारण करने लगूं तो यह तो अभिमान है और इस अभिमान में अहंकार की उत्पत्ति हो करके अन्तः करण में आवागमन के संस्कारों का जन्म होने लगता है। उसे मानव आवागमन के आंगन में आता रहता है।

मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या कि हम अपने प्यारे प्रभु की शरण में जाएं। उसकी प्रतिभा को विचारने लगें। क्योंकि परमात्मा की विचारधारा एक महान् है, आनन्द है। उस आनन्द को हमें पान करना है और उस आनन्द के आंगन में रमण करने वाला प्राणी संसार में निराशा को प्राप्त नहीं होता, वह सदैव उत्सहित रहता है। उत्साह उसका गुण बन जाता है। मेरे प्यारे! आज मैं इस वाक्य को अधिक प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह कि हम धर्म के चारों पगों को ले करके जब हम मार्ग में रमण करते हं, 'सत्य' को अपनाएं, सत्य के पश्चात् 'तप' को अपनाएं तप क्या है? इन्द्रियों का निग्रह, इन्द्रियों के विषय को विचारना, उन विषयों पर अनुसन्धान करना, उनका शाकाल्य बनाना और मन और प्राण को अर्पित करना। इसके पश्चात् 'दया' आती है और 'दान' आता है, इन चारों पगों को ले करके जब हम संसार में चलते है तो हमारे जीवन की गति ऊर्ध्व बन जाती है। विचार विनिमय यह कि आज प्रत्येक मानव, प्रत्येक ऋषिवर अपने जीवन में महत्ता चाहता है। ऊंची उड़ान चाहता है, योग मे परणित होना चाहता है। परन्तु **योगी वह होता है जो मानव इस संसार से उदासीन बनता हुआ और अपनेपन में अपने में समाहित रहता है और जनता जनार्दन में जनार्दन (परमात्मा) को दृष्टिपात करता है।**

आज मैं अधिक विवेचना तो देने नहीं आया हूँ। केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। **प्रभु की याचना कर रहे थे, हे प्रभु। आप तो महान् हैं। हमारे ऊपर करुणा करो। हे प्रभु! आप ममतामय हैं, आपको वेद ने वसुन्धरा कहा है, कामधेनु कहा है, आप कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं। हे प्रभु! मैं आपको बारम्बार नमस्कार कर रहा हूँ। आप मेरे ऊपर अनुपम कृपा कीजिये और हम सदैव आनन्द में विचरण करना चाहते हैं। हमें आनन्द को प्रदान कीजिये।** यह है बेटा! आज का वाक्य, अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पाठ। अच्छा भगवन्। दिनॉक : 22 सितम्बर 1973, समय : प्रातः 6 बजकर 30 मिनट। स्थान : आर्य समाज रानी तालाब, फिरोजपुर शहर।

७. पंच–महायज्ञ 24 मई 1976

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहां से ही उस मनोहर वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान–विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। जो ज्ञान और विज्ञान में रमण करने वाला है वह महान् मेरा चैतन्य देव प्रभु कहा जाता है। उसका ज्ञान और विज्ञान इतना नितान्त माना गया है कि वह मानवीय हृदयों में समाहित होता हुआ इस सृष्टि चक्र को क्रियाशील बना रहा है। जब हम यह विचार विनिमय करते हैं कि परमपिता–परमात्मा कैसा भव्य है तो वह ऋषि मुनियों के हृदय में अथवा मानवीय हृदयों मे सदैव ओत–प्रोत रहने वाला है।

आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कह रहा था कि **'यज्ञं गच्छत प्रभे यज्ञोवस्य देवाः वृतं लोकाः'** वेद का ऋषि यह कह रहा था, मेरे प्यारे! महानन्द जी की भी इतनी प्रेरणा रहती है मानो इतनी प्रेरणा बाध्य करती रहती है कि हम यज्ञों के सम्बन्ध में अपना कुछ विचार विनिमय करें। हमने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा कि जितने भी प्राणी यहां आते हैं, एक मानव ही नहीं जितना भी प्राणीमात्र है वह सर्वत्र एक याज्ञिक बना हुआ है, वह यज्ञ करने के लिए आया है। याग का अभिप्राय यह है। मानव के लिए ऋषि–मुनियों ने पांच प्रकार के यज्ञों का चयन किया। जैसे प्रथम ब्रह्म यज्ञ कहा जाता है। द्वितीय यज्ञ का नाम देव–यज्ञ है, तृतीय का नाम अतिथि–यज्ञ है और चतुर्थ का नाम बलिवैश्वयज्ञ और पंचम का नाम भूत यज्ञ माना गया है। जिसका हम पितृ–यज्ञ भी कहते हैं। ये पांच प्रकार के यज्ञ हमारे यहां परम्परा से ही वैदिक साहित्य में निहित हैं।

ब्रह्मयज्ञ

जब हम यह विचार विनिमय करते है कि पांचों प्रकार के जो यज्ञ हैं उनमें सबसे प्रथम ब्रह्म–यज्ञ आता रहा है। ब्रह्म का अभिप्राय यह है कि ब्रह्म का चिन्तन करना। प्रातःकाल में ब्रह्म की आभा को जानना और प्रातःकाल की अमृत बेला में ब्रह्म–यज्ञ करना। ब्रह्म यज्ञ कहते हैं जो ब्रह्मा को यजमान बना करके स्वयं होता अथवा यजमान बन करके अपना यज्ञ करता है, विचार–विनिमय करता है, अनुसन्धान करता है, उसका नाम ब्रह्म यज्ञ कहलाया गया है।

जैसा हमने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा कि सृष्टि का सर्जन करने के पश्चात् परमपिता–परमात्मा उसका नियन्ता बना हुआ है अथवा उसको क्रिया दे रहा है, उसको क्रियाशील बना रहा है। तो वह जो चैतन्य देव है, वह जो मेरा प्रभु है वह सृष्टि चक्र को चला रहा है, उनको गति दे रहा है। इसी प्रकार मानव के जीवन में भी उसकी प्रतिभा निहित रहती है जैसे सृष्टि का जब प्रारम्भ होता है तो उस समय परमपिता परमात्मा स्वयं ब्रह्मा बनते हैं। यह आत्मा यजमान बनता है। ये जो पंच महाभूत हैं ये होता बनते हैं। यज्ञों की रचना हो जाती है। उस समय परमपिता–परमात्मा सृष्टि रूपी याग का ब्रह्मा बना हुआ है, उद्गान गा रहा है, उद्गान हो रहा है। सत् गान हो रहा है, ऋत गान हो रहा है, वायु और अग्नि दोनों का मिलान हो करके गान गाया जा रहा है। वह देव कितना सुन्दर उद्गम उद्गार से यह सृष्टि याग प्रारम्भ हुआ। उसी नियन्ता के नियंत्रण में कार्य हो रहा है। आत्मा इस यज्ञशाला में कर्म करने वाला। उस याग को जानने के लिए बेटा! आत्मा रूपी यजमान यज्ञशाला में विराजमान है। आत्मा रूपी यजमान कैसा सुन्दर आत्मा है, वह इस संसार को जानता रहता है, वह संसार में अनुसन्धान करता रहता है, लोक लोकान्तरों को जानता रहता है, विज्ञान में जाता है तो कहीं आध्यात्मिक वाद में परणित होता है। कहीं भौतिकवाद में रूपावेश हो जाता है। तो यह नाना प्रकार की ऋतु वाला यह आत्मवत् अपना कार्य करता रहता है। क्योंकि वह यज्ञशाला में विराजमान है। यज्ञशाला में जो क्रिया होती है उसी क्रिया के अनुसार कहीं यह विचार करने वाला बन जाता है। कहीं भूत यज्ञ करने वाला लगता है, कहीं अतिथि यज्ञ होने लगते हैं, तो कहीं देव पूजा होने लगती है। वह ब्रह्म याज्ञिक क्या

विचारता है कि मुझे ब्रह्म का चिन्तन करना है। वह कहीं समाधिस्थ हो जाता है। कहीं जनता में जनार्दन को स्वीकार करके कण—कण में प्रभु का दिग्दर्शन करता है। ऐसा जो महापुरुष होता है जो अत्यवत् होता है। वह इस ब्रह्म यज्ञ को जानता है। सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म—यज्ञ माना है। क्योंकि ब्रह्म कहते हैं परमात्मा को और यज्ञ कहते हैं उस संसार की रचना को और रचना हो करके यह संसार चल रहा है। एक लोक दूसरे में निहित हो करके गति कर रहा है। एक अग्नि और वायु मिल करके गति कर रहे हैं। अन्तरिक्ष और ऋत गति कर रहे हैं। यह ब्रह्माण्ड ऋत और सत् में दृष्टिपात आ रहा है।

विचार विनिमय क्या कि सबसे प्रथम यज्ञ हैं पति पत्नी एक स्थान में विराजमान हो करके प्रातःकाल ब्रह्म—यज्ञ करते हैं। ऋषि—मुनि विराजमान हो करके ब्रह्म—यज्ञ करते हैं। ब्रह्म का अभिप्राय कि ब्रह्म का चिन्तन। ब्रह्म की आभा को, ब्रह्म की सृष्टि को जानना। ब्रह्म की आभा को अपने में निहित करने का नाम ब्रह्म—यज्ञ है।

देव—यज्ञ

द्वितीय यज्ञ का नाम देव—पूजा कहा जाता है। जिसे देव—यज्ञ कहते हैं। हमारे यहां दो प्रकार के देवता कहलाते हैं, एक देवता जड़ हैं और दूसरे चैतन्य होते हैं। जड़ देवता ये पंचमहाभूत हैं। पंच महाभूतों में उसकी रचना है। जैसे सूर्य, चन्द्र और नाना नक्षत्र, ये हमारे देवता हैं, ये देते रहते हैं। चन्द्रमा सोम अमृत प्रदान करता है। सूर्य हमें तेज देता है; जीवन देता है, ओज देता है, तेज की स्थापना कर देता है। पृथ्वी हमें सुगन्धि देती है, जल हमें अमृत देता है और रस देता है। तेज हमें वायु को प्रदान करती है। वायु हमें प्राण देता है और अन्तरिक्ष हमें शब्द देता है। यह कितना सुन्दर यज्ञ हो रहा है उस मेरे देव का स्वतः ही हो रहा है। जो मानव वाक्य उच्चारण करता है, वायु के भिन्न—भिन्न भेदन माने हैं। आयुर्वेदाचार्यो ने वायु की सहस्त्रो धाराएं मानी हैं। विज्ञान ने लाखों अरबों धाराएं स्वीकार की हैं। आज मैं विज्ञान के युग में जाकर उन धाराओं का वर्णन करने नहीं आया हूं।

विचार केवल यह देने के लिए आये हैंकि वह देव पूजा है। देव पूजा का अभिप्राय क्या है कि हम देव पूजा करें। पूजा का अर्थ है उनका सदुपयोग करना, उनको क्रिया में लाना। तो प्रातःकाल में यज्ञ करता है। देखो राजा जनक जैसा प्रातःकाल में यज्ञ करता है, द्वापर काल में युधिष्ठिर जैसा प्रातःकाल में देव—यज्ञ करता रहा है। भगवान कृष्ण जब प्रातःकाल में यज्ञ होता रहता तो यज्ञ करते रहते थे। पत्नी और वे दोनों यज्ञ करते रहते थे। आज मैं यज्ञों के सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं दूंगा। यह यज्ञ है इनको करना हमारा कर्त्तव्य है, यज्ञ में जाना हमारा देवत्व पूजन है; यह देव—पूजा कहलाती है। द्वितीय प्रकार का यज्ञ है। हमें अग्नि को सुगन्धित देना है, हम जितना लेते हैं दुर्गन्धि के बदले सुगन्धि प्रदान करें। हम वाणी मधुर बन करके वाणी का सुन्दर रस प्रदान करें और अग्नि को हम तेज देते चले जाएं, तेजस्वी बनें। जिसमें वायु की प्रतिक्रिया को जानते रहें और शब्द हमारा मधुर हो जिससे हमारा अन्तरिक्ष ऊंचा बने। ये पांच प्रकार की आभाएं कहलाई जाती हैं। जब यजमान यज्ञशाला में विराजमान होता है तो पुरोहित यही कहता है कि हे यजमान! यह **"पंच महाभूता अग्नि ब्रह्म लोकः"**, ब्रह्म लोक में ले जाती है, यह पंच महाभूतों को जानने वाला पुरुष ब्रह्मलोक में चला जाता है। ऐसा वेद का ऋषि कहता है कि पांचों प्रकार के पंच महाभूतों को जानने वाला प्राणी ब्रह्म लोक में चला जाता है। अब जब वेद का मन्त्र वेद का ऋषि ऐसा कहता हैं तो उसमें एक आश्चर्य आता है कि ऐसा वेद का ऋषि क्यों कह रहा है? आगे जब एक वेद का मन्त्र आया **"पंचम् भूतग प्रभे वृताः—मन वृत्ति विस्तितो सुत्राः मा वा क्रित्यो मत प्रभि वृताः"**, अब जब यह वेद का मंत्र स्मरण आया तो इसमें और कुछ दृष्टिपात आने लगा। जब इस वेद मन्त्र का विभाजन किया, विभक्त करके इसका सन्धिपात किया गया तो इसमें क्या—क्या निकला? इसमें यही आया कि पंच महाभूत पांचों मन के हैं और वह मन के एक ऋतु में पिरोये हुए हैं और वह जो ऋत और सत् है वह 'ओ3म्' रूपी धागे में पिरोये हुए हैं। जब 'ओ3म्' रूपी धागे को जाना जाता है, उस सूत्र को जानने वालो को ब्रह्म ही ब्रह्म सदैव दृष्टिपात आता है और वही ब्रह्म कहलाया जाता है।

तो बेटा! यह हमारे यहां पंच महाभूतों की प्रतिक्रियाएं हमारे यहां देव यज्ञ कहलाया है और देव पूजा इन पंच–महाभूतों को जानता है। ये जड़ देवता हैं। परन्तु एक देवता हमारे यहां चैतन्य देवता है, ब्राह्मण देखो वेद का पठन–पाठन करने वाला उसको हम पुरोहित भी कहते हैं, उसको पराविद्या को जानने वाला भी कहते हैं, ब्रह्म के निकट चला गया है। हमारा यजमान कहता है यज्ञशाला में हे पुरोहितों! आओ मेरे यज्ञ को पूर्ण–करा करके मुझे परा विद्या में ले जाओ, मैं इस संसार से उपराम होना चाहता हूँ। जब इस प्रकार की आभाएं स्मरण आती रहती हैं तो वह ज्ञान और विज्ञान मानव को ऊर्ध्व पर ले जाता है। उसके पश्चात् यह **"पुरोहितम् ब्रह्मे।"** यह चैतन्य पुरोहित कहलाते हैं, यह **"प्रतम् ब्रह्मो"**, देखो पुरोहितों के द्वारा यज्ञ होता रहता है। यज्ञ का अभिप्रायः है कि मानव को अच्छाइयों में परणित होना। सुन्दर धाराओं को, धर्म के मर्म को जानना। देव पूजा करना उनको सुगन्धित करना यह यज्ञ कहलाया गया है। जहां यह यज्ञ है उसको देव यज्ञ कहते हैं। जहां दोनों चैतन्य और जड़ देवताओं की पूजा होती है। पूजा का अर्थ है उनको सदुपयोग में लाने का नाम पूजा कहलाई जाती है।

अतिथि–यज्ञ

आगे चल करके वेद का ऋषि कहता है कि तृतीय जो यज्ञ है वह अतिथि यज्ञ है। अतिथि कौन होता है? **"अतिथि प्रभावृत्ता।"**, जो किसी की तिथि निश्चित न हो और वह श्रीमान् गृह आ जाये तो उसको अतिथि कहते हैं। उसको नाना प्रकार के पदार्थों का पान कराना, उदर की पूर्ति कराना उसको अतिथि कहते हैं। यजमान कहता है कि अतिथि आ, तू मेरे गृह के साकल्य को पान कर, तू अपने पुण्य को मुझे दीजिए। देखो पुण्यवान के गृहों में ही बुद्धिमान् अतिथि आते रहते हैं। कौन है? जो बुद्धिमान तपस्वी होता है। वह जो गृह में आता है अतिथि बन करके वह अपने पुण्यो को त्याग देता है। जब वह गृह में त्याग देता है तो वह ''पुण्याद–पुण्याद देवस्तः''। वेद का ऋषि कहता है कि वे पुण्यवात् पुरुष होते है जिन गृहों में महापुरुष आते रहें और महापुरुषों की तरंगें होती रहे। वह अपने शब्दों के चित्रों को गृह में त्याग देता है। बेटा! मैं विज्ञान में जाना नहीं चाहता हूं। क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी को भी दो शब्द उच्चारण करने हैं। विचार क्या कि मैं इस विचार को बहुत ऊर्ध्व गति में ले जाऊं इतनी ऊंची उड़ान नहीं उड़ना चाहता हूं। क्योंकि अतिथि का अभिप्राय यह है कि वह अपने पुण्य को त्याग देता है और वह यजमान के हृदय की आभा को अपने समीप ले जाता है और हृदय में प्रसन्नता को मुक्त कर देता है मानो वह अतिथि यज्ञ कहलाया गया है।

बलिवैश्व–यज्ञ

अब बलिवैश्व–यज्ञ, बलिवैश्व है जो प्राणी के लिए अपने जीवन में सुगन्धि देते हैं। प्राणों को भी न्यौछावर कर देते हैं उन पक्षियों के लिए जो वाणी से वाक उच्चारण नहीं कर सकते। वाक उच्चारण तो कर लेते हैं परन्तु वह विद्या परिश्रम से तो जान पाता है। आज उन प्राणियों को देना हमारा बलिवेश्व–यज्ञ है। अग्नि को देना, अग्नि उन्हें प्रदान कर देती है। अग्नि उसका हव्य बन करके उनको प्राप्त करा देती है उसको बलिवैश्व–यज्ञ कहते हैं।

पितृ–यज्ञ

एक भूत यज्ञ कहलाया जाता है। जिसमें पुरोहित जन होते हैं और जितने महापुरुष होते हैं उनमें माता और पिता भी आते हैं, उनका पूजन करना अर्थात् उनका यथोचित् उनकी इच्छाओं की पूर्ति करने का नाम उनकी पूजा कहलाई जाती है। आज जब उनकी सेवा की जाती है, उनका युक्त आदर किया जाता है, आचार्यों का भी और माता–पिताओं का भी वह हमारे यहां पितृ–यज्ञ कहलाते हैं। पितृ कौन होते है? पितर की बहुत विशाल व्याख्या है, माता–पिताओं का नाम भी पितर है, राजा को भी पितर कहते हैं, पितर नाम आचार्यों का भी है, पितर नाम परमात्मा का भी है, पितर नाम अग्नि का भी है, पितर वायु को भी कहा गया है, पितर नाम अन्तरिक्ष को भी कहते हैं, पितर नाम यज्ञ को भी कहा गया है और पितर नाम हमारे यहां राजाओं का भी जो अधिराज होता है

उसको भी पितर कहते हैं। पितर का अभिप्राय है कि जिससे हमारे रक्षा होती हो उसी का नाम पितर कहलाया गया है। मैं पितरों की व्याख्या देने तो नहीं आया, समय मिलेगा मैं इसकी व्याख्या प्रकट करूंगा।

आजका विचार कि हम पंच–महा–यज्ञों के करने वाले बनें। ये पंच–महा–यज्ञ के करने वाले यजमान अपने गृह को सुन्दर बनाते हैं। अपने गृह को पितृ–यज्ञी बनाता है है, देव यज्ञी बनाता है, विचित्र यज्ञी बना करके इस संसार सागर से पार–पार होता है। अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूं, मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे। अच्छा भगवन्। दिनाँक : 24 मई 1976, समय : प्रातः 10 बजे। स्थान : श्री लक्ष्मण सिंह ठण क्ण् व्ण्ए चितसौना

८. साधना में अन्न की महत्ता 22 फरवरी 1977

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहां परम्परा से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद वाणी में उस मेरे देव परमपिता–परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह परमपिता–परमात्मा प्रतिभाशाली है। उसका जो ज्ञान और विज्ञानमय–जगत् है, वह इतना अनन्त माना गया है कि वह सीमा से रहित है वह सीमा में नहीं आता। वह परमात्मा चैतन है। उसी की चेतना से बेटा! यह शून्य जगत्, चैतन्य जगत् यह सर्वत्र क्रियाशील दृष्टिपात आ रहा है। यह सर्वत्र क्रियाशील है, क्रिया कर रहा है। प्रत्येक परमाणु क्रिया कर रहा है, प्रत्येक अणु क्रिया कर रहा है। प्रत्येक शब्द अपनी क्रिया कर रहा है। प्रत्येक प्राण अपनी क्रिया कर रहा है, मन अपनी क्रिया कर रहा है। विचार यह कि सर्वत्र ब्रह्माण्ड मेरे प्यारे! देखो क्रियाशील है, अपने–अपने आसन पर क्रीड़ा कर रहा है।

जड़–जगत का रूपान्तर

मुनिवरो! देखो, एक–एक सूत्र क्रिया में लगा है। एक मानव वस्त्रों का निर्माण कर रहा है, एक मानव उन वस्त्रों को धारण कर रहा है। परन्तु जब उस वस्त्र का रूपान्तर हो जाता है अथवा उस वस्त्र का स्थूल रूप समाप्त हो जाता है, तो उसका जो कण है, जो एक–एक कण में अपने रमण कर गया है, वह अपने स्वरूप में गति कर रहा है। वह परमाणु रूपों में गति कर रहा है और वह जो परमाणु है पुनः उनका रूपान्तर होता रहता है। परमाणुओं से पुनः स्थूल बनता है और स्थूल बन कर के बेटा! पुनः वस्त्रों का निर्माण हो जाता है। तो परिणाम क्या? मुनिवरों! देखो सर्वत्र यह जो ब्रह्माण्ड है परमात्मा के राष्ट्र में जो पदार्थ हैं अथवा जितना भी यह जड़ जगत् अथवा शून्य जगत् है इसका रूपान्तर होता रहता है। और एक–दूसरे में गतिमान है।

शब्द की महत्ता

हमने बहुत पुरातन काल में काल में कहा था मानव अपने मुखारबिन्द से शब्दों का उच्चारण कर रहा है। परन्तु उस शब्द में गति है और वह शब्द जितना भी सात्विक होता है, जितना भी मार्मिक होता है, जितना वह दर्शनों से गुथा हुआ होता है उतना ही उस मानव का चित्र शब्द के साथ में जाकर के बेटा! द्यु–मण्डलों का निर्माण कर रहा है। तो विचार क्या? मुनिवरो। देखो जितना भी यह शब्द है वह पवित्र होता है, बेटा! वह काल मुझे स्मरण आ रहा है जब महाराजा अश्वपति के यहां विद्यालय में बेटा! अध्यापन का कार्य करते रहते थे। अध्यापन में एक पंक्ति में ब्रह्मचारी विद्यमान हैं और उसी पंक्ति में राजा का पुत्र है। उसी पंक्ति में प्रजा का पुत्र है उसी में मानो चारों वर्णों के पुत्र विद्यमान हैं। परन्तु शिक्षा एक ही प्रकार की है।

सबसे प्रथम मानव के लिए यह कहा गया है कि हे ब्रह्मचारी! तूं अनुशासन में रह। तेरा अनुशासन विचित्र होना चाहिए। जब बालक अनुशासन में रहता है तो आचार्य उससे पूर्व से ही अनुशासन में रहता है। जब दोनों

अनुशासन में रहते हैं तो जैसे मानव का शब्द अनुशासन में गति करके, परमाणु अपनी गति में गतिमान हो करके दार्शनिक शब्द, सतोगुणी शब्द द्यु–लोक को प्राप्त होता है। इसी प्रकार मानो विद्यालय ऊँचा बनता है। क्योंकि देखो जो वह शब्द है वही तो ऊंचा बना रहा है, वही तो इस संसार का निर्माण कर रहा है। पुत्रो! शब्द ही राष्ट्र का निर्माण कर रहा है। शब्द ही मानो देखो योगी को योगी बना रहा है। शब्द ही मुनिवरो! प्राणेश्वर कहलाता है। मानो शब्द अपने–अपने आंगन में ध्वनि के साथ में शब्दों को रूप में परणित करते रहते हैं।

पवित्र अन्न

हमने बहुत पुरातन काल में कहा था कि इन्हीं शब्दों को मानव जब साधना में प्रवेश करता है तो उस समय वह सबसे प्रथम वह अन्न के क्षेत्र में प्रवेश करता है। अन्न के जब क्षेत्र में जाता है कि हमारा जो अन्न है वह कैसा होना चाहिए? बेटा! उस अन्न में सर्व योग प्रयत्न विद्यमान रहते हैं। जितना भी योग साध्य है, जितना भी परमाणुवाद है, जितने भी मुनिवरो! मानव के अंग हैं वे सर्व मानव के अन्न में विद्यमान रहते हैं। आज कोई मानव यह कहता रहे कि अन्न किसी भी प्रकार का हो उसका विचारों पर अर्न्तद्वन्द्व नहीं होता परन्तु जब मानव सूक्ष्म क्षेत्र में पहुंचेगा, योग के सूक्ष्म रहस्यों में प्रवेश करेगा वहां उसे अन्न की धाराओं का ज्ञान प्रतीत होता है। अन्न की तरंगों की वहां प्रतीति होती है।

मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। राजाओं के राजकोष का ऋषि–मुनि अन्न ग्रहण नहीं करते थे। जो महान् तपस्वी होते हैं, जो ब्रह्मवेत्ता बनना चाहते हैं, राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाना चाहते हैं, प्राण और मन की क्रिया को जानना चाहते हैं मुनिवरो! **राष्ट्र उन ऋषियों से होता है, राष्ट्र से ऋषि नहीं होता।** बेटा! यह वाक्य तुम्हारे विचार में आना चाहिए। क्योंकि राष्ट्र को जन्म देने वाला ऋषि है। **राष्ट्र को जन्म ऋषि देता है। राष्ट्र ऋषि को जनम नहीं देता।** तो मेरे पुत्रो! आज जब हम यह विचारते रहते हैं कि ऋषियों का जीवन महान और पवित्र होता है। योगी जब प्राण के क्षेत्र में जाता है मुझे वह वाकय स्मरण आता रहता है—महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान रहते। प्रातःकालीन भ्रमण करते तो मुनिवरो! देखो कुछ अन्न लाते भयंकर वनों से, मानो उस अन्न को लाते थे जिस अन्न पर किसी भी प्राणी का अधिकार नहीं रहता था। केवल प्रकृति और परमात्मा का उस पर अधिपत्य रहता था। तो मेरे प्यारे! देखो उसको पान करते थे और पान करके मानो ऊंची उड़ान उड़ते रहते थे और उनकी कैसी उड़ान रहती थी? जो ब्रह्म में, प्राणों में, मनो में बेटा! विचरण करते रहते थे।

मेरे प्यारे। देखो सबसे प्रथम मानव को, साधक को यह विचारना है कि हमारा अन्न कैसा होना चाहिए? जिसे **अन्नमय कोष** कहा जाता है। अन्न के कोष के विचारों में जाना चाहिए। मेरे प्यारे! अन्न के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि **अन्न का निर्माण करने वाली मेरी प्यारी माता को भी पवित्र होना चाहिए। अन्न का पान करने वाला भी विचारो में पवित्र होना चाहिए।** मेरे प्यारे! जिस प्रकार का, जिस भूमि का, जिस स्थली का अन्न होता है वह भी उतना ही पवित्र होना चाहिए। तो तीन धाराएं अन्न की होती हैं, उस अन्न में तीन प्रकार की तरंगे होती है, वे तरंगे ही मुनिवरो! साधक को ऊंचा बनाती हैं। मुझे मेरे प्यारे! महानन्द जी ने एक समय वर्णन करते हुए कहा था, कि अन्न का प्रभाव आज का समाज स्वीकार नहीं करता। मैं यह कहा करता हूँ, जीवन का हमारा कुछ सूक्ष्म सा अनुभव यह है कि वह अनुभव यह है कि **अगर अन्न पवित्र नहीं होगा तो कोई मानव ऋषि बन ही नहीं सकता।** क्योंकि मुझे वे काल स्मरण आते रहते हैं जिन कालों में ऋषि और मुनि थे, दो प्रकार की धाराएं होती हैं। एक मानव ऋषि कहलाता है, एक मुनि कहलाता है। एक मानव देखो वृत्तियों में रमण करने वाला साधक कहलाया जाता है। **प्रत्येक मानव को साधक बनना है।** साधक बने वाला प्राणी मेरे प्यारे! मानवता में ऊंचा रहता है। इसलिए विचार विनिमय क्या? वेद का आचार्य यह कहता है, वेद का ऋषि यह कहता है, आचार्य यह कह रहा है कि हे मानव तूं अपनी मानवता में इतना ऊंचा बन; साधक बनना है तो इतना महान् बन कि तेरे व्याकरण की ज्योति भी मानो जो अन्न तेरे मस्तिष्क में, जो मानो तेरे त्रिवेणी के स्थान में दो कृतिका होती हैं वह जो

कृतिका स्वरों में अपना स्वर ध्वनियाँ करती रहती है। हे योगी! तूं उस अन्न को अपने में ग्रहण कर। तूं अपने श्रोतों को ब्राह्य जगत् से आन्तरिक जगत् में लगा। उस अन्न को तूं स्वीकार कर मानो जिससे तेरा जो व्याकरण है, तेरी जो स्वर तरंगे हैं वह मानो देखो ब्रह्माण्ड की तरंगे तेरे समीप आती रहें। परन्तु देखो आज मैं तुम्हें इतने गम्भीर क्षेत्र में नहीं ले जाऊंगा।

अन्न की तीन धाराएँ

केवल विचार विनिमय यह कि अन्न की तीन धाराएं हैं। अन्न पवित्र होना चाहिए। जब मानव का अन्न पवित्र हो जाता है तो मुनिवरो! उसकी स्वतः ही तीन धाराएं बनना प्रारम्भ हो जाती है। तीन धाराएं क्या हैं? तीन धाराओं को बनाने वाला कौन है? वह अन्न है। क्योंकि उसी से तरंगे उत्पन्न होती हैं और अन्न के शरीर में जाने के पश्चात् तीन प्रकार के भाग स्वतः बन जाते हैं। एक भाग तो स्थूल बन जाता है। स्थूल का स्थूल में रमण कर जाता है। द्वितीय भाग रक्त में परिवर्तित हो जाता है और तृतीय भाग तरंगों में ओत–प्रोत हो जाता है। यह मुनिवरो! देखो अन्न के तीन प्रकार से, तीन प्रकार की धाराएं स्वतः निर्मित हो जाती है और वह जो स्थूल है मुनिवरो! वह तो पृथकता को प्राप्त हो गया और जो रक्त का संचार है मानो वह गति को प्राप्त हो गया। मेरे प्यारे! वह गतिवान बन गया और वह जो तरंगे हैं, अन्तरिक्ष का वे निर्माण करती रहती है। तो विचार विनिमय क्या? कि वे जो तरंगे हैं उन्हीं तरंगों से मानव को जिसको त्रिवेणी का स्थान कहते हैं वहां कृतिका होती है, दो होती हैं परन्तु मध्य में एक धारा कृतिका होती है। मानो जब वह मरण करने लगती हैं वह साधक को इतना प्रकाश में ले जाती हैं, इतने महान् ऊँचे जगत् में ले जाती हैं मेरे पुत्रों! देखो, अग्नमयी कोष की तीनों जो श्रेणियां हैं इन कोषों की तीन जो धाराएं हैं वह अपने अपने कोष को एकत्रित करना प्रारम्भ करती हैं और प्रारम्भ करके बेटा! देखो जो मानव का ब्रह्माण्ड और पिण्ड की जो ऋषि–मुनि कल्पना करते हैं वह ब्रह्माण्ड की कल्पना मुनिवरो देखो मानव अपनी तरंगों में ओत–प्रोत हो करके उन कृतिकाओं में रमण करके बेटा! देखो अपने में वह अनुभवी बन जाता है। वह स्वतः उसमें रमण करने लगता है। जब उससे रमण करता है तो सर्व ब्रह्माण्ड का जो चक्र है उसको वैज्ञानिक नाना प्रकार की तरंगों से नहीं, नाना प्रकार के परमाणुओं के मिलान से नहीं जान सकता।

प्राण और मन

वह जो योगी है वो जो सारे ऋच और यन्त्र उनका जो निर्माण है। उसमें प्राण और मन दोनों की टुक्टुकियां (संयुक्त क्रिया) दोनों का प्रहार होता है मुनिवरो! यह जो ब्रह्माण्ड है जो ब्रह्माण्ड हमें दृष्टिपात आ रहा है, लोक–लोकान्तरों वाला जगत् है उसको वैज्ञानिक यह कहते हैं कि एक दूसरा ब्रह्माण्ड, एक दूसरे में गति कर रहा है। एक–दूसरी आभा, में रमण कर रही है। मुनिवरो! देखो यह जो प्राण है और मनुष्यत्व है इन दोनों का सन्निधान, दोनों का सम्मेलन होने से मानो एक दूसरा गति करके मुनिवरो! मानव बाह्य जगत् में आन्तरिक जगत के ब्रह्माण्ड की कल्पना करने लगता है और वह सर्वत्र ब्रह्माण्ड की जो कल्पना है मेरे प्यारे! वह कल्पना बनकर के ही नहीं रहती वह अपने स्वरूप में गति करने लगता है। अपने स्वरूप में ही अनुभव करने लगता है। अपने ही स्वरूप में पृथ्वी के गर्भ में जब वह जाता है अपने ही स्वरूप में वह आपोज्योति के गर्भ में चला जाता है और वह अपने स्वरूप में अग्नि की धाराओं में, अग्नि की ज्वालाओं में निहित हो जाता है। अग्नि की तरंगों में रमण करने लगता है। मानो अपने ही स्वरूप में वह जो योगेश्वर है वह वायु और अन्तरिक्ष दोनों के परमाणुओं को जानता हुआ इस ब्रह्माण्ड की सर्वत्र कल्पना उसके समीप आनी प्रारम्भ हो जाती है।

मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें साधना की चर्चा करने आया था। साधना की चर्चा तो प्रारम्भिक यह है जो बेटा! मैंने तुम्हें उच्चारण किया कि अन्न पवित्र होना चाहिए। अन्न से ही मुनिवरो! रथ बनता है। वह **साधना का एक रथ बनता है** और उस रथ में विद्यमान होने वाला कौन है? मेरे प्यारे जीवात्मा है। जीवात्मा बेटा! रथ पर विद्यमान हो करके ब्रह्मा के द्वार को चलता है। ब्रह्म के आंगन को चलता है और जब ब्रह्म के आंगन को चलता

है तो मुनिवरो! ब्रह्म के आंगन में उस रथ में विद्यमान होने वाले जीवात्मा के समीप पृथ्वी के जो आठो अंग हैं, योग के जो आठों अंग है पंखड़ियों से रथ का निर्माण होता है बेटा! आठों जो अंग हैं योग के धारणा में, समाधि में, धारणा, ध्यान, समाधियों में परणित होता हुआ वह ऐसे रथ में जीवात्मा विद्यमान हो जाता है कि उस रथ का जो गमन है वह ऊर्ध्व गति को जा रहा है। वह जो विमान है साधक का मुनिवरो! देखो वह ऊर्ध्व गति को जा रहा है। **"अष्टा चक्राः नव द्वारा।"** देखो आठों जो चक्र हैं वह आठों जो ब्रह्मात्मा है, ब्रह्मात्मा क्यों कहलाता है? क्योंकि उसका जो विचार है उसके जो उत्थान है वह ब्रह्म के लिए होता जा रहा है। तो मुनिवरों? वह जो आठों प्रहरी है यह आठों जो चक्र हैं इनको पार होता हुआ, **'ओम, भू, र्भुव, स्वः, महः जनः, तपः सत्यम"** मानो इनमें रमण करता हुआ एकाकी सत्य में रमण करता हुआ मुनिवरो! वह आठों अंगों को पार करता हुआ, आठों चक्रों को पार करता हुआ, वह सत्य में रमण करता है। उसे संसार में मिथ्या प्रतीत नहीं होता सर्वस्व। क्योंकि वह स्वयं शब्द है, शब्द की कल्पना है शब्द का साथी बना हुआ हैं और मुनिवरो! **यह ब्रह्माण्ड उसे सत ही सत प्रतीत होने लगता है। हे प्रभु! यह सत् ही सत् है मानो क्रिया है, क्रिया में सत्यता है और वह जो सत्य है उस में मिथ्यवाद नहीं होता। अन्तर्द्धन्द्व नहीं होता, वहां अन्धकार नहीं होता। क्योंकि प्रभु के राष्ट्र में बेटा! प्रकाश ही प्रकाश रहता है। वहाँ अन्धकार नहीं होता।**

आओ मेरे प्यारे मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार देना केवल यह चाहता रहता हूँ कि आज हम मुनिवरो! आठ चक्रः नव द्वारः जिनके ऊपर मानो सयंम करना चाहते हैं। इनके ऊपर सयंम करते हुए नाना प्रकार की धाराओं को पंखड़ियों में रमण करना चाहते हैं। मेरे पुत्रो! आज का हमारा विचार यह क्या कह रहा है? मैंने अभी–अभी कुछ तुम्हें सूक्ष्म परिचय दिया है और वह परिचय क्या है? कि **"अन्नादम भूतं प्रवेः।"** अन्नपवित्र होना चाहिए। **अन्नों में जो कोष है, इसी कोष को हमें सबसे प्रथम जानना है।**

उसके पश्चात्, अन्न कोष के पश्चात् मुनिवरो् वह **"विप्रः लोकः।,"** प्राणों में रमण करता हैं। प्राणों को जानता है! एक दूसरे में प्राणों को जानता हुआ वे जो तरंगे हैं उन्हीं तरंगों में प्राण ओत–प्रोत रहता है। वह **प्राण–कोष** में रमण करता है। मानो साधक उनका मिलान मिलाता है, साधक मिलाता नहीं है मानो वह तो स्वतः अन्नमय कोषों के साथ–साथ प्राणमय कोष में रमण करता रहता है। स्वतः ही उसे मानो 'अप्रः' प्राप्त होती रहती है।

उसके पश्चात् वह **मनोमय–कोष** में चला जाता है। यह जो मानव के द्वारा जो मन है यह मन प्रकृति का सूक्ष्म तन्तु माना जाता है। सबसे सूक्ष्म तन्तु है। उस तन्तु को जानने वाला क्योंकि इसी मानों में मेरे प्यारे सर्व ब्रह्माण्ड क्या, मानो जितना भी यह परमाणुवाद, सृष्टिवाद है यह मन की ही रचना है और मन ही मुनिवरो! इसके निहित रहता है। यह मन ही इनको एकत्रित करता है। वह कोष कहलाता है। मनोमय कोष कहलाया जाता है। वह जो मनोमय कोष है, मेरे प्यारे! जितना भी प्रकृति का यह प्रपंच है, जितनी भी प्रकृति की यह रचना है चाहे वह अणुवाद में है, परमाणुवाद में है, मेरे प्यारे! यह मन सब की रचना, सबका निर्माण करने वाला है। मानों विभक्त करने की क्रिया इसमें विशेष है विभक्त क्रिया का कोष मेरे प्यारे! इसमें विद्यमान रहता है। चाहे वह पृथ्वी में विभाजन होना हो चाहे विचारों में विभाजन हो रहा हो, चाहे परमाणुवाद में विभाजन हो रहा हो चाहे मेरे प्यारे! लोक–लोकान्तरों के रूप में विभाजन हो रहा हो, चाहे अग्नि के रूप में विभक्त–क्रिया दृष्टिपात हो रही हो। वह विभाजन करने वाला कौन? प्रकृति का एक सूक्ष्म तन्तु, एक तरंग है, जिस तरंग को मेरे प्यारे! **मनुष्यतत्व** कह जाता है। वह मन है उसे मनोमय कोष कहते हैं; जो विभाजन कर रहा है, वो विभक्तता जिसमें भी है वह सब मनों के कारण है।

मेरे प्यारे! यह विभाजनवाद उस काल में त्यागता है जिस काल में बेटा! प्राणों से इसका मिलान हो जाता है। प्राणों में जब इसकी विचारधारा उसके गर्भ में परणित हो जाती है तो मेरे प्यारे! मन का वाहक् समाप्त हो जाता है। मन की धाराएं मन का विभक्त होना, मन में विभाजनवाद की क्रियाएं समाप्त हो जाती हैं। मन की आभा समाप्त होने के पश्चात् मेरे पुत्रो! मानव शून्य गति को प्राप्त होता है। परन्तु वह जो आत्मा इन तीनों चक्रों

की आभाओं में विद्यमान है, जो आत्मा ऊर्ध्व गति को जा रहा है, अन्न को त्याग रहा है मानो प्राणों—मय कोषों को त्याग रहा है। मुनिवरो! मनोमय कोषों को त्याग रहा है। वह कहां जा रहा है?

आनन्द ही आनन्द

मन को पश्चात् **विज्ञानमय—कोष** की प्रतिभा आती हैं। यह जो विज्ञान है, मुनिवरो! यह दो प्रकार का माना गया है। एक विज्ञान वह कहलाता है जिसे भौतिकवाद कहते हैं, जिसमें परमाणु विद्या है। मानो वह मन के अन्तर्गत ही आती है। परन्तु एक विचारधारा, एक विज्ञान की तरंगे हैं जो यौगिक कहलाती हैं। एक रूढ़ि होती हैं। रूढ़ि वह कहलाती है जो प्रकृति के सन्निधान से आती है, जो मनुष्यत्व के सन्निधान से आती है। परन्तु देखो यौगिक वह होती है जो मेरे प्यारे! अनुभव में आती है वहां मनुष्यत्व काम नहीं आता। वहां केवल आत्मा में परमात्मा के गुण आने प्रारम्भ हो जाते हैं। मुनिवरो! जैसे अग्नि में लौ देने के पश्चात् उसमें अग्नि के परमाणु आने प्रारम्भ हो जाते हैं। अग्नि के परमाणुओं से मानो वह अग्नि का स्वरूप धारण कर लेती है। जब अग्नि के स्वरूप को धारण कर लेती है तो मुनिवरो! अग्निमय बन जाती है। इसी प्रकार मुनिवरो! देखो, आत्मा जो चेतना है यह प्रकृति के गुणों को त्याग करके यह परमात्मा के गुणों में गुण—वान् होने लगता है और जब परमात्मा के गुण इसमें प्रवेश कर जाते हैं तो मुनिवरों! यह विज्ञानमय कोषों को भी त्याग करके आनन्द के क्षेत्र में रमण कर जाता है। यह आनन्द ही आनन्द में प्रवेश करता है। क्योंकि उसके गुण इसमें विशेष आ जाते हैं। उस आनन्द को सोचता रहता है। उसको हमारे यहां आनन्द कहते हैं। क्योंकि परमात्मा आनन्द है, परमात्मा में विडम्बना नहीं है। **परमात्मा स्वतः आनन्द है।** उस आनन्द को प्राप्त करके जीवात्मा आनन्द के क्षेत्र में बेटा! विभोर हो जाता है। मानो ब्रह्माण्ड उसके लिए खिलवाड़ बन जाता है। परमात्मा जैसे रचयिता है और इसमें रमण कर रहा है परन्तु इससे पृथक् भी है। इसी प्रकार मुनिवरो! देखो आत्मा में उन गुणों का गुणा—धान हो जाता है और गुणा—धान होने के पश्चात् मानव उस आनन्द में विभोर हो जाता है। अपने में प्रतिष्ठित हो जाता है। अपने में रमण करता रहता है। तो मुनिवरो! विचार विनिमय क्या? कि वह योगी बाह्य जगत् में नहीं आता, वो योगी बाह्य जगत् में न आ करके मुनि बन जाता है, मानो वह तो मधुर विद्या में रमण करता है। उस **मधु विद्या** में रमण करने वाला बेटा! अन्न को जानता है।

दो प्रकार का अन्न

विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूँ। यह तो तुम्हे प्रतीत ही है। मैं तो मानो अंकुरों की चर्चा कर रहा हूँ। मैं वृक्ष की चर्चा नहीं कर रहा। जिन अंकुरों से वृक्ष बनता है, केवल साधना की चर्चा कर रहा था। हे साधक! यदि तू साधना में जाना चाहता है, साधना को जानना चाहता है, साधना में प्रवेश करना चाहता है तो **सबसे प्रथम मौन होकर के तेरा अन्न पवित्र होना चाहिए।** अन्न का अभिप्राय यह है कि जो भी कुछ तुम भक्षण करते हो, जिससे तुम्हारी तृप्ति होती है, जो सर्वत्र अन्न माना गया है। मैंने बहुत पुरातन काल में पुत्रो! तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि संसार में दो प्रकार के अन्न होते हैं। एक अन्न वह होता है जो मुनिवरो! योगेश्वर पान करता है। एक अन्न वह होता है जिसको पान करने से मानव स्थूल को प्राप्त होता है। तो मुनिवरों! दो प्रकार का अन्न नाना रूपों में रमण कर रहा है। एक अन्न आत्मा का है और एक अन्न शरीर का है। अहाः स्थूल अन्न को पान करने से मानव का शरीर स्थूल बनता है।

'सूक्ष्म ब्रह्मेः आत्मा का ज्ञान—विज्ञान है। जो आध्यात्मिकवाद है, अध्यात्मिक चर्चाएं हैं वह आत्मा का भोजन है। इन दोनों प्रकार के भोजों को ही ऊँचा बनाना है। दोनों प्रकार के भोजन को महान् बनाना है। जिससे दोनों प्रकार के भोजन को हम पान करते हुए, यह जो संसार है यह दोनों प्रकार का भोज लेकर के मानो अपने में प्रतिष्ठित हो जाता है। आओ मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। एक समय बेटा! मुझे कुछ चर्चाए महर्षि विभाण्डक मुनि, महर्षि दधीचि से कुछ चर्चाएं करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महर्षि दधीचि मुनि महाराज जब भयंकर वन में विद्यमान रहते थे। तो एक समय कहा गया महाराज! तुम भयंकर वन में रहते हो, क्या पान

करते हो? उन्होंने कहा मैं अन्न को पान करता हूँ। वह ऐसा विचित्र था। महात्मा दधीचि ने प्राणायम किया और प्राणों का एक सूत्र मिलाया मुनिवरो! वायु मण्डल में जो परमाणु गति करते हैं उन परमाणुओं से अपने भोजनलय की तृप्ति कर लेते थे। मानो उसीसे वह तृप्त हो जाते थे और तृप्त हो करके मुनिवरो देखो जैसे कोई मानव अन्नमय कोष को जानता है, प्राणमय कोष को जानता है। दोनों कोषों का मिलान करना जानता है। जैसे फल विद्यमान है तो मुनिवरो! देखो अपने नेत्रों की ज्योति और घ्राण से जो प्राण आता है, वह प्राण का और ज्योति का दोनों का मानो एक तारतमय मिल जाता है, और तारतम्य मिल करके उस समय वह **सूर्य प्राणायाम करता है, और सूर्य प्राणायाम करता हुआ उसमें खेचरी मुद्रा लगाता है।** तो मुनिवरो! **वह साधक फलों के सूक्ष्म अणु को अपने में धारण कर लेता है।** तो मुनिवरो! देखो वह अपने में तृप्त हो जाता है।

साधना की जहां चर्चाएं है मैं इस गम्भीर और विचारणीय क्षेत्र में जाना नहीं चाहता हूं। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है कि मानव साधना में क्या—क्या कर सकता है? जब साधना प्रारम्भ करता है तो **सबसे प्रथम अन्न को सूक्ष्म और स्थूल दोनों प्रकार के अन्नों को जानना है।** सूक्ष्म अन्न कैसा होता है? और स्थूल अन्न कैसा होता है? मानो, देखो स्थूल अन्न जो है वह मानव के शरीर को वरिष्ठ बनाता है। सूक्ष्म जो अन्न है वह प्राण को ऊंचा बनाता है। जब प्राण बनता है तो उससे मनोबल आता है। जब मन ऊँचा होता है तो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार एक सूत्र में आ जाते हैं। मानो चित्त में जो मन का कोष है, मनोमय कोष है वह कैसा कोष है? मेरे प्यारे! वह इतना विचित्र है कि करोड़ो—करोड़ो जन्मों के संस्कार मुनिवरो चित्त में विद्यमान होते हैं। वह मनों का ही तो कोष कहलाता है। क्योंकि **मन बुद्धि, चित्त, अहंकार ये मन की ही धाराएं हैं।** ये मन की ही तरंगे हैं। मेरे पुत्रो! देखो उसी से अन्तरिक्ष का निर्माण होता है। उसी से वह नदियों का निर्माण कर लेता है, उसी से वायु का निर्माण कर लेता है, उसी से अग्नि का निर्माण कर लेता है। वही मुनिवरो! नाना निर्माण करता हुआ, इस चित्त में जो संस्कार हैं, उन संस्कारों का वह सूक्ष्म बना देता है और स्वतः सूक्ष्म बन करके मानव विज्ञान के आध्यात्मिक क्षेत्र में रमण करता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में रमण करता हुआ वह परमपिता परमात्मा के आनन्द को प्राप्त करता रहता है।

आओ मेरे प्यारे! सूक्ष्म अन्न से मानव का प्राण ऊँचा बनता है, प्राणों से मन ऊँचा बनता है और जब मन पवित्र और ऊँचा बन जाता है, तो इसमें चंचलता नहीं रहती, विडम्बना नहीं रहती। यह विज्ञानमयी तरंगों में ओत—प्रोत होता हुआ यह आत्मा आनन्द को प्राप्त होता है। तो विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें बहुत सुक्ष्म रहस्य में ले गया हूँ। तरंगों में ले गया हूँ। परन्तु इसका एक—दूसरे से सन्निधान, एक—दूसरे से मिलान करने की आवश्यकता नहीं रहती। मानव का प्रारम्भिक जीवन ऊँचा बन जाता है, प्रारम्भिक साधना ऊंची बन जाती है। प्रारम्भिक साधना में मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब हम अपने पूज्यवाद गुरुओं के द्वारा उनके चरणों में ओत—प्रोत हो करके उनके चरणों की वन्दना करते रहते थे। अध्ययन करते रहते थे। जब प्रश्न करते थे तो मेरे प्यारे! वह पुनः सुन्दर उत्तर देते थे। जब वह उत्तर दिया करते है उससे मुनिवरो! हमारा आत्मा पवित्र हो जाता है और पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा करते थे, ''प्रभु! हमें साधना में परणित करा दो, हम साधना में प्रवेश करना चाहते हैं।'' तो पूज्यपाद गुरुदेव हमें प्राणों की दुकदुकी दिया करते थे। मानो अन्न की दुकदुकी दिया करते थे। अन्न और प्राण का दोनों का सम्बन्ध है। क्योंकि प्राण ही तो अन्न को निगल जाता है, प्राण ही संसार को निगल जाता है। यह प्राण ही है मेरे प्यारे! जो प्रकृति को अकिंचन बना देता है। यह प्राण ही है जो विस्तार रूप बना देता है। यह प्राण ही है जो अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ने लगता है तो प्राण ही प्राण अपना कार्य करता है। प्राण का जो भोज है। वह अन्न है। अन्न को पान करता है। क्योंकि अन्न उसी में समाहित हो जाता है। तो इसलिए मेरे प्यारे! जब अन्न प्राण में समाहित हो जाता है, प्राण मन में समाहित हो जाता है और क्योंकि जब प्राण के स्वरूप में जब यह मन प्रवेश कर जाता है इसीलिए हमार ऋषि मुनि प्राणायम किया करते हैं। प्राणायम करने वाला जो महा पुरुष होता है उस प्राणायम करने वाले को कोई रोग नहीं होता। प्राणायाम करने

वाले को बेटा! विडम्बना नहीं होती। प्राणायाम करने वाला का संसार में कोई शत्रु नहीं होता। प्राणायाम करने वाले का संसार भी मित्र बन जाता है। क्योंकि यह प्राण ही संसार में ओत–प्रोत हो रहा है। जब यह प्राण ही प्राण है तो कौन इसका शत्रु बन पाएगा।

यह प्राणायाम कहां किया जाता है? यह मन ही तो प्राण में समाहित होता जाता है और जब यह मन प्राण में समहित हो जाता है तो विभक्त क्रिया समाप्त हो जाती है। जब विभक्त क्रिया नहीं रहती तो राग–द्वेष नहीं रहता, जब राग–द्वेष नहीं रहता और प्राण मन में प्रवेश कर गया है तो उसका कोई शत्रु नहीं जब शत्रु नहीं तो बेटा! वह संसार का मित्र वन जाता है। आओ मेरे पुत्रो! हमें विश्वामित्र बनना है, विश्व का मित्र बनना है तो उस काल में बनेंगे जब हम प्राणायाम करेंगे। जब अपनी साधना को ऊंचा बनाएंगे। जो मानव साधना में ऊंचा बनता है तो मुनिवरो! अन्न से प्राण और प्राण से मन ऊंचा बनता है और जब यह तीनों एक सूत्र में आ जाते हैं आत्मा इनके ऊपर विश्राम करता रहता है। उसमें चेतना के गुण आने प्रारम्भ हो जाते हैं। मानो उसमें परमात्मा का ज्ञान, परमात्मा के गुण इसमें प्रवेश होने आरम्भ हो जाते हैं। उसके पश्चात् यह विज्ञान के क्षेत्र में न रह करके परमात्मा के आनन्द में प्रवेश कर जाता है।

मुनिवरो! आजका हमारा यह विचार क्या कह रहा है? हमारे विचारों की धारा क्या कह रही है? हमें उस परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए चेतना में प्रवेश करते हुए मेरे पुत्रो! हमें परमात्मा के क्षेत्र में जाना है, आराधना करनी है। मुनिवरो! हमें यथार्थ ज्ञान और विज्ञान में प्रवेश करना चाहिए। आओ पुत्रो! मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें यह चर्चा करने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन में ऊंचा बनना है, प्रतिष्ठित बनता है। आत्मा को परमात्मा के ध्यान में प्रवेश कराना है। मुनिवरो! आज मैं सूक्ष्म सी चर्चा देने आया हूँ।

मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ, न मैं बुद्धिमान हूँ। केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। संक्षिप्त परिचय क्या है? कि यह पंच–महा–कोषों को जो परिचय है जिसके वृक्ष बना–बना करके बेटा! किसी काल में ये प्रकट करूंगा। यह सब गुरुओं से वस्तु प्राप्त होती है। हे मानव! तू गुरुओं की शरण में चल। अन्न को जान। वह जो कृतिका है जिसे त्रिवेणी स्थान कहते हैं जहाँ गंगा, जमुना, सरस्वती तीनों का मिलान होता है वह जो कृतिका हैं उनको जानने का प्रयास करके तू सोम रस को पान करने वाला बन। वह जो सोम रस है जो अन्तरिक्ष के अन्तिम छोर से आता है जो तेरी साधना का प्रतीक है। तेरी साधना तेरे अन्न से प्रारम्भ होगी। अन्न से तेरा विचार बनेगा। विचारों से तेरे विचार आन्तरिक और बाह्य जगत् में प्रवेश होगे। बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् दोनों बन गए तो हम प्राण के कोष में प्रवेश करेंगे। प्राणमय–कोष जब प्रतिष्ठित हो गया तो मनोमय–कोष उसके समीप आ गया। तो मुनिवरो! एक दूसरे में यह प्रतिष्ठित होते हुए, एक–दूसरे में ओत–प्रोत होते हुए अन्तिम बेटा! देखो उसका छोर आनन्द है। यह आनन्द में मानो सर्व कोष उसमें प्रवेश कर जाते हैं। यह है बेटा! आजका वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा, मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा।

कल मेरे प्यारे! महानन्द जी कुछ अपने सूक्ष्म विचार प्रकट करेंगे। आजका विचार–विनिमय क्या? कि हम परमपिता–परमात्मा की आराधना करते हुए, योगीजन उस अन्न को पान करते हैं, जिस पर किसी का अधिकार नहीं होता, वे देवता कहलाते हैं। वह देवपुरियों में रहते हैं। तो मुनिवरो! देखो ''ब्रह्मचरिष्यामि,'' ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वगति बनाते हैं प्राण के द्वारा उसके पश्चात् वे मुनि बनते हैं। यह है बेटा! आज के वाक्य अब समय मिलेगा शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि परमात्मा का ऐसा अमूल्य क्षेत्र है, ऐसा जगत् है कि कोई भी मानव इस को सीमाबद्ध नहीं कर सकता। यह संसार सीमा से रहित है। यह है बेटा! आज का वाक्य। कल मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। अच्छा भगवन्। दिनाँक : 22 फरवरी 1977, समय : दोपहर 3 बजे स्थान : लाक्षागृह बरनावा,

६. साधना क्या है? 25—2—1977

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद—मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन—पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेद—वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद—वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा महान और प्रतिभाशाली कहलाया जाता है, क्योंकि उसी की प्रतिभा से यह संसार अथवा यह ब्रह्माण्ड अपने में क्रियाशील हो रहा है। जितनी भी क्रियाएं तुम्हें दृष्टिपात होती है उन सर्वत्र क्रियाओं का जो उद्बुद्ध करने वाला है वह मेरा देव परमपिता—परमात्मा ही कहा जाता है, क्योंकि **वह अमूल्य चेतना है।**

मानवीय पद्धति

यहां मानव अपनी—अपनी आभा के अनुसार अपनी—अपनी उड़ान उड़ता रहता है। कोई मानव साधना की उड़ान उड़ता रहता है, कोई मानव अपने प्राणों का निरोध करता रहता है, कोई परमाणुओं का निरोध करता रहता है, कोई कर्मकाण्ड की वेदी पर अपने विचारों का समन्वय करना चाहता है। तो यहां नाना प्रकार की आभाएं, नाना प्रकार की विचार धाराएं **मानवीय पद्धति** कहलाती हैं। यह मानवीय विचारधारा है और उन विचारधाराओं के साथ में मानव की पद्धतियों का निर्माण होता है और उन नाना प्रकार की पद्धतियों का जब निर्माण होता है तो मुनिवरो! इस समाज का जो विचार है, राष्ट्रीय सम्पदा है वह मानवता में परणित हो जाती है।

साधना के क्षेत्र

आओ पुत्रो! मैं तुम्हे विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ केवल तुम्हें यह विचार देने के लिए आए हैं कि **मानव की साधना क्या है?** हमारे यहां परम्परा से ही जब हम अपने पूज्यपाद गुरूओं के द्वारा प्रवेश करते थे तो गुरूओ के चरणों में ओत—प्रोत हो करके उनसे कुछ प्रश्न किया करते और प्रश्नों के साथ में वह आचार्य हमें एक साधना की पद्धति, साधना की आभा नियुक्त करते रहते। मेरे पुत्रो! आचार्यों ने बहुत ऊंची उड़ान उड़ी साधना के सम्बन्ध में। प्रत्येक मानव प्राणायाम जानना चाहता है, प्राण की प्रतिभा को जानना चाहता है। तो नाना प्रकार के रूपों में प्राण की विद्या निहित रहती है। प्राणों की विद्या को जो मानव जानता है, वह इस संसार में नाना प्रकार की उड़ान उड़ता है। आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद दोनों की उड़ान उड़ता रहता है, तरगों से ऊंचा बनता रहता है। तरंगों के पश्चात् मुनिवरो! वह ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता है। तो इसीलिए प्रत्येक मानव साधना के क्षेत्र में जाने के लिए तत्पर रहता है।

एक समय मेरे पुत्र ने यह वर्णन कराया कि प्राणों का निरोध करने का नाम साधना है। परन्तु प्राण का निरोध किससे किया जाता है? जो प्राणों का विभाजन करता है और यह विभाजन कौन करता है? मुनिवरो! उसको हमारे यहां **मनस्तत्त्व** कहा जाता है। वह जो मनस्तत्त्व है वह जब प्राणों से अपना निर्माण करता है, सन्धि करता है तो उसके नवीन—नवीन निर्माण स्वतः होते रहते हैं। उसको **निर्विकल्प विचार कहा जाता है।**

परन्तु रहा यह कि जब तक मानव आसन को शुद्ध नहीं कर पाता, जब तक हम यही नहीं जानते कि हम किस स्थली पर विराजमान हो करके कौन सी वार्ता को लाना चाहते हैं, कौन से विचारो को हम किस क्षेत्र में लाना चाहते है। मुनिवरो देखो वह मानव, मानव की आभा में परणित नहीं होता, वह अपनी साधना में परणित नहीं होता। एक मानव उड़ान उड़ता रहता है। हमारे यहां भिन्न—भिन्न प्रकार की उड़ान परम्परा में रही है। मेरे प्यारे देखो! जैसे बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा कहलाती है। **बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञा यह चार प्रकार की तरंगे बेटा! मनुष्यत्व की मानी जाती हैं** और यह कितनी ऊंची उड़ान है। मेरे पुत्रो! बुद्धि से द्यौ जितना दृष्टिपात आता है

उसका सम्बन्ध नेत्रों से बाह्य जगत से है। उसके पश्चात् बुद्धि से मेधा आती है, मेधा का सम्बन्ध प्रकृति में जो परमाणु विद्या है नाना प्रकार की परमाणु विद्या है उसको वह शोधन कर रहा है, उसे अपने में धारण करना चाहता है, उसे अपने में लाना चाहता है। परन्तु इसी प्रकार बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा में मौन होना प्रारम्भ करता है। मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञा में परमात्मा का साक्षात्कार उसमें आभायित होता रहता है, उसमें एक मानवता प्रतीत होती रहती है।

बाह्य जगत में साधक

आओ मेरे पुत्रो! मैं विशेष चर्चा तो तुम्हें देने के लिए नहीं आया हूँ। तो विचार–विनिमय यह है कि प्रत्येक मानव साधना के क्षेत्र में बेटा! परम्परा में हम कल्पना करते रहे हैं। विचारते रहे हैं कि साधना क्या है? तो मुनिवरो! साधना सबसे प्रथम मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था कि बाह्य जगत में मानव को साधक बनना चाहिए। नाना प्रकार का चमत्कारिक यह जो जगत है यह मानव में चंचलता ला देता है। **आज हमें सबसे प्रथम अध्ययन के द्वारा, चिन्तन के द्वारा इस बाह्य जगत को विजय करना है।** हमारे यहां परम्परा से ऐसा ही कहा जाता है कि बाह्य जगत है, हमारी आन्तरिक प्रवृत्तियां जो बाह्य जगत में आ गई हैं, बाह्य जगत वाला जगत है। उसे हमें जानना है तो हम इन्द्रियों के विषयों का साकल्य बना सकते हैं। हम इन्द्रियों के विषयों को एकत्रित कर सकते हैं और एकत्रित करके प्राण में निरोध कर सकते हैं। जब उनका निरोध होता है तो मुनिवरो! मानव को एक मार्ग प्राप्त होता है, **साधना का मार्ग प्राप्त होता है।**

साधना के रूप

साधना के कई प्रकार माने जाते है। एक साधना तो मानवीय चिन्तन की साधना हैं। एक स्थली पर मानव विद्यमान रहता है और वह साधक बनता है, साधक की भांति ऊंची उड़ान उड़ता है। साधक साधना में प्रवेश करना चाहता है तो वह जो साधक बन गया है वह एक परमात्मा की आभा में रमण करना चाहता है। तो मुनिवरो! देखो वह साधना कहलाती है। क्योंकि वह प्राण और मन दोनों में संगतिकरण चाहता है, दोनों का निर्माण करना चाहता है। मुनिवरो! मानव के द्वारा स्वतः होती रहती हैं और वह साधना का एक अमूल्य विषय बन जाता है। इसीलिए यह मानव का सबसे प्रथम चिन्तन है, उसके पश्चात् **निदिध्यासन** है। देखो, अपने आसन पर विद्यमान होकर के वह संकल्प के साथ आसन पर विद्यमान होता है। वह आसन का शोधन करता है। अहा! आसन को एक महाकृतिमा में ले जाना चाहता है तो **आसनम्** कहलाया गया है।

तो इसीलिए मेरे पुत्रो! संसार में प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या **जो साधक बनना चाहता है वह अपनी साधना को चिन्तन के द्वारा, आहार के द्वारा, व्यवहार के द्वारा, मुनिवरो! अपने विचारों को ऊर्ध्व गति में ले जाना प्रारम्भ करता है** और साधना, ऋषि–मुनियों के काल में वह कैसी साधना है? ऋषि मुनियों का काल किस काल में नहीं रहता है? ऋषि–मुनियों का काल तो सदैव रहता है। परन्तु सदैव जो जानने की आवश्यकता है, जानना चाहिए। मुनिवरो! **प्राणायाम करना चाहिए।** स्वतः आसन जब बन जाता है तो रात्रि समय हम योग का चिन्तन करते हैं। हम अपने प्राणों को मन से मिलान कराना चाहते हैं। जो मन स्वप्न में भी जाता है जो मन सुबुद्धि में भी प्रवेश करता है, सुषुप्ति वाले मन को एक सूत्र में लाना है और एक सूत्र में ला करके वह अभ्यास कर रहा है। जब वह अभ्यास कर रहा है, अभ्यस्त हो रहा है तो मेरे पुत्रो! वह ब्रह्म के लोक में प्रवेश करना प्रारम्भ करता है। ब्रह्म के लोक में जब प्रवेश करता है तो मुनिवरो! जैसे मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था क्योंकि मन और प्राण दोनों का सन्निधान करना है, उनका निरोध करना है। निरोध कैसे होता है? (1) अध्ययन के द्वारा, (2) चिन्तन के द्वारा, (3) प्राण के द्वारा। क्योंकि प्रायः जब सायंकाल को कोई योगी आसन पर विराजमान होता तो श्वांस की गति में एक तरंगवाद होता है और मनोनीत गतियों में जब एक व्याकृत होता है तो मुनिवरो! श्वांस के साथ वह अपने मन का तारतम्य लगा रहता है। क्योंकि सर्वत्र यह जो मन है यह स्वप्न में भी प्राप्त होता है।

स्वप्न में भी दुष्ट स्वप्न होते हैं उनमें भी यह प्रवेश करता है, तो कोई वाक्य नहीं। हृदय में भी प्रवेश करता है, आभाओं में भी प्रवेश करता है।

परन्तु आज मुनिवरो! मैं प्रवेश की चर्चा नहीं करूंगा। विचार यह देना चाहता हूं कि देखो अपने चिन्तन की अवस्थित ब्रही लोक में प्रवेश करता है। मेरे प्यारे! जब यह निद्रा में तल्लीन होता है, सुषुप्ति में चला जाता है तो मुनिवरो! प्रत्येक प्राण के साथ श्वास ही गति कर रहा है। तारतम्य लग रहा है। सुषुप्ति अवस्था में वह चिन्तन करे या न करे परन्तु उसका, महापुरुष का ऐसा तारतम्य चल रहा है जैसे माला में मनके होते हैं और माला के मनके एक सूत्र में पिरोए जाते हैं तो यह मन की, नाना प्रकार की चंचलता है वह प्राण रूपी सूत्र में ओत–प्रोत हो जाती है। जब वह प्राण रूपी सूत्र में ओत–प्रोत होती है तो प्राण रूपी क्षेत्र में प्रवेश करके उसका चिन्तन प्रारम्भ रहता है, चिन्तन की गतियां चलती रहती हैं परन्तु रहा यह आगे चल करके मुनिवरो! जब ये गतियां प्रारम्भ रहती हैं तो एक प्राणायाम ऐसा है जो प्रातःकालीन, मध्यरात्रि में भी किया जाता है। मानो शून्य गति को समाज प्राप्त हो रहा है, परन्तु मानव एक आभा में, एक ही चित्रशाला में प्रवेश कर गया है कि चित्रशाला में ओत–प्रोत होने के पश्चात् मेरे प्यारे! स्वतः आसन पर विद्यमान हो करके **वह प्राणों का पुनः निरोध करता है और वह रेचक के द्वारा करता है, कुम्भक के द्वारा कर रहा है। रेचक और कुम्भक करना यह प्राण देखो इसमें ओ३म् की ध्वनि होना उस सूत्र में इसको पिरोने का नाम साधना कही जाती है।**

साधना में अनुभूति

रहा यह कि साधना में योगी को कैसा अनुभव होता है? मेरे प्यारे! अनुभव के कई प्रकार हैं। एक तो जैसा भी मन में, चित्त में संस्कार होगा, वह संस्कार प्राणायाम करने वाले प्राणी के उद्‌बुद्ध होने आरम्भ हो जाते हैं। वह उनके रूप में परणित होने प्रारम्भ हो जाते हैं। तो मुनिवरो! वह जो नाना प्रकार का स्वरूप है वहीं संकल्प के साथ में मानव को अनुभूति होने लगती है। अनुभूति क्योंकि उसके मन के संकल्प के साथ में यदि मन का संकल्प नहीं होगा, मनस्तत्व नहीं होगा तो संकल्प से कदापि भी मानव ऊंचे नहीं बन सकते, न संकल्प ही ऊंचा बन सकता है। तो इसीलिए मुनिवरो! विचार–विनिमय क्या, कि मानव की जो साधना है, मानव जो साधना में प्रवेश करना चाहता है वह साधना कहलाती है, हमें प्राणायाम करना चाहिए। कुम्भक और नाना प्रकार की प्राण की आभाओं में रमण करता हुआ रेचक, कुम्भक और पूरक करता रहता है। तो मेरे पुत्रो! धीमे–धीमे संयम करना, धीमे–धीमे अपने को ईश्वर में प्रणिधान करना, यह परम्परा की योग्यता है, परम्परा का एक विचार है। जो परम्परा में ही ऊंचा बनाना चाहता है तो यह परम्परा कहलाती है।

साधना में परणित रहना चाहिए

आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज का विचार केवल यही कि मानव को अपनी साधना में परणित रहना चाहिए। साधना क्या है? साधना इसी को कहते हैं, एक–दूसरी आभा में रमण करना। जैसा मेरे पुत्र ने कहा, एक मानव यह कहता है कि समाधिस्थ हो जाएं क्योंकि **निर्विकल्प समाधि होना कोई आश्चर्य नहीं है।** क्योंकि निर्विकल्प है उसकी कल्पना जब नहीं की जाती तो साकार रूप में उसकी साधना भी कैसे बन सकती है? तो यह विचार में नहीं आता। इसीलिए हमारा ऋषि कहता है कि हम साधना के उस क्षेत्र में प्रवेश करना चाहते हैं जहां योगी अपने मस्तिष्क को विचारता है। मस्तिष्क की आभा में रमण करता है। तो आओ मेरे प्यारे! उस आभा में रमण करने वाला जो प्राणी मानो योगेश्वर है, योगी है, वही प्राण को जानता हुआ इस सागर से पार होने का प्रयास करता है। परन्तु आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ, मैं व्याख्याता नहीं हूँ। केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ और परिचय यह कि नाना प्रकार हैं साधना के। साधना में जो प्रवेश करता है इस आत्मा को ब्रह्मरन्ध्र और प्राण के ऊपर दो सूत्रों में परमात्मा को अपने में पिरो लेता है और अपने में पिरोता हुआ मुनिवरो! वही साधना करने वाला प्राणी मानवीय लोकों को प्राप्त होता रहता है।

आजका हमारा विचार–विनिमय क्या है? आज का हमारा वेद का ऋषि यह कहता है, **हे मानव! तू साधना में परणित हो, तू साधना में रमण कर। क्योंकि साधना ही तेरा जीवन है, साधना ही तुझे ऊंचा बनाती है।** इसीलिए प्रत्येक मानव को साधक बनाना चाहिए, साधना में परणित रहना चाहिए। जो मानव साधना में रहता है उस मानव की मृत्यु संसार में नहीं होती, मृत्यु को वह अपने आंगन में नहीं लाता, मृत्यु से वह मानव उपरामता को प्राप्त हो जाता हैं तो इसीलिए मुनिवरों! मृत्यु की कल्पना करना, मृत्यु में लाना यह महापुरुषों का कार्य नहीं, महापुरूषों का कार्य तो परम्परा से चित्त की वृत्तियों को निरोध करना है, चित्त की वृत्तियों को जानना है, जान करके उसको अपने आंगन में ला करके उसके रूपों को बनाना है। यह प्रत्येक मानव का जीवन है। आओ मेरे पुत्रों! यह आज का हमारा वाक्य क्या उच्चारण कर रहा था? हमारा जीवन क्या कह रहा था? हमारी मानवता क्या कह रही है? आओ मेरे पुत्रो! **हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए प्राण से यह जो श्वास की गति है इसके द्वारा प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या जो कि उस मनन को श्रवण करना चाहिए।**

मैं यह विचार नित्यप्रति देता रहता हूं कि साधना के द्वारा, यौगिकता के द्वारा मानव मेरे प्यारे! ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वागति का निर्माण करता है। आज जो योगी ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्व बनाता है, वह महान है, वह विचित्र है। इसीलिए प्रत्येक मानव विचित्र बनना चाहिए। वही मानव संसार में महान् बना करता है, महान् कहलाता है। तो आओ मेरे पुत्रो! आज मैं यह वाक्य तुम्हें प्रकट करने के लिए आया हूं कि मैं यह विचार देता हुआ दूर चला गया।

मेरे प्यारे महानन्द जी कल राष्ट्रीय सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर रहे थे जिन विचारों से हमें ऊँचा बनना है, जिन विचारों से राष्ट्र का उत्थान करना है जिन विचारों से मानवता का प्रसार करना है। तो यह जो विचारधारा है यही तो मानव को ऊँची बनाती है कि मानव अपने विचारों को कहां ले जाना चाहता है? जिस स्थली को ले जाना चाहता है उस स्थली को जाना जाए। परन्तु उस स्थली के उपरान्त एक महत्ता की ज्योति आती है और जो महत्ता की ज्योति को जानता है वह महान कहलाता है। अब मैं विचार देने के लिए नहीं आया हूँ। **मैं यह वाक्य प्रकट करने के लिए आया हूँ कि हमारे यहां ऐसे–ऐसे महापुरूष हैं जिन महापुरूषों का जीवन परम्परा से महान और विचित्र रहा है। हमें उन्हें जानना है और साधना में रमण करते हुए इस संसार सागर से पार होना है।** यह है आज का हमारा वाक्य। अच्छा भगवन्। दिनाँक : 25–2–1977 समय : दोपहर 3 बजे स्थान : लाक्षागृह बरनावा

१०.सन्ध्या अर्थात् सन्धि 19–4–79

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर देव की महिमा का गुण–गान गाया जाता है, जिसका प्रत्येक परमाणु उसकी प्रतिभा अथवा उसकी महिमा का गान गा रहा है। यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड उस मेरे देव की महिमा का गुणगान गाता ही चला जा रहा है। मेरे प्यारे! यहां परम्परा से ही वेद के एक–एक मन्त्र के ऊपर अनुसन्धान होता रहा है। वर्तमान ही नहीं, परम्परा से ही विचार–विनिमय करने वाले ऋषि–मुनि अपनी–अपनी स्थलियों पर प्रायः गुणगान गाते रहे हैं और उनका चिन्तन मनन करते रहे हैं। हमारे यहां सबसे प्रथम आध्यात्मिक विज्ञान–वेत्ताओं ने अपने मानवत्व को ऊंचा बनाने के लिए यौगिकता का आश्रय लिया है। क्योंकि प्रत्येक मानव के हृदय में यह आकांक्षा बनी रहती है कि मेरा अन्तरात्मा ऊर्ध्व–गति वाला बने। क्योंकि जिससे जिस वस्तु का विच्छेद होता है उससे उसके मिलन की आकाँक्षा बनी रहती है। तो इसीलिए प्रत्येक मानव यह चाहता रहता है कि मैं योगी बनूं और योगी बनने की

उसकी आकांक्षा इसलिए बनी रहती है; कि उससे इसका विच्छेद हो गया है। और योग कहते किसको हैं? आचार्यों ने तो योग की भिन्न–भिन्न प्रकार की अपनी विचारधाराएं और नाना मान्यताएं प्रायः परम्परा से मानी हैं। परन्तु आचार्यों ने ऊर्ध्वागति में जाने के लिए बेटा ''अपनी प्रवृत्ति को किसी सूत्र में पिरोना है।'' क्योंकि कोई भी मानव जब साधना में प्रवेश करता है, तो अपनी प्रवृत्तियों को वह किसी सूत्र में पिरोने के लिए तत्पर होता है। जब तक उस मानव का एक सूत्र नहीं होगा; तब तक वह साधना में भी ऊर्ध्वा–गति को प्राप्त नहीं होता।

आत्म–याग

मुझे बेटा! नाना ऋषियों का जीवन चरित्र अथवा उनकी साधना स्मरण आती रहती है। उन्हांने अपनी साधना की पवित्र शैली में यही कहा है कि हमारा जो मन; करने की जो धारणा है, वह किसी सूत्र में होनी चाहिए। जैसे हमारे यहाँ वेद के ऋषियों ने 'अनुशासन' को योग का एक **'व्रहीः कृत आश्वास'** माना हैं। मेरे पुत्रों! अनुशासन ही योग का एक अंग' माना है। परन्तु जिस काल में हम संध्या की पुलकित आभा में परणित हो जाते हैं उस समय हमें कुछ और ही दृष्टिपात आने लगता है। मेरे पुत्रों! मुझें स्मरण आता रहता है; हमारे ऋषि–मुनि सन्ध्या के काल में, अपनी सन्ध्या की पुलकित बेला में अपनी नाना ग्रन्थियाँ सुलझाते थे। जैसे रात्रि और दिवस दोनों का मिलान होता है और उसको संध्या काल कहते हैं इसी प्रकार मानव की जो नाना प्रकार की बिखरी हुई प्रवृत्तियाँ हैं, उन बिखरी हुई प्रवृत्तियों को जब एक सूत्र में लाया जाता है और उनका एक मानो समय बन जाता है। उसके पश्चात् वह आत्म–याग के लिए तत्पर हो जाता है। जैसे याग है; वह **आत्म याग कहलाता है,** क्योंकि प्रत्येक इन्दियों का जो विषय है उसका साकल्य बना करके यह आत्मा; वह ज्ञान–रूपी जो अग्नि प्रचण्ड हो रही है, उस ज्ञान–रूपी अग्नि में वह उसका 'स्वाहा' करता है। उस संध्याकाल में जो आत्म चेतना है वह उद्‌बुद्ध हो जाती है। वह **'उद्‌बुद्ध स्वाहा'** कहने लगता है। क्योंकि 'उद्‌बुद्ध स्वाहा;' इसीलिए कहता है क्योंकि वह आत्मा जो ज्योति है वह इसके लिए साक्षात्कार होने लगती है।

व्यापक–वाद

तो मेरे पुत्रो! विचार–विनिमय क्या है? हमारे यहां जब सन्ध्या के लिए मानव विद्यमान होता है तो सन्ध्या हम किसे कहते हैं? **दो वस्तुओं के मिलान का नाम सन्ध्या कहा जाता है अथवा इसको हम सन्धि कहते हैं।** हमारे यहां परम्परा से ऋषियों ने संध्या–काल को एक व्रती सन्ध्या कहा है और वे सन्ध्या क्यों कहते हैं? क्योंकि दोनों का मिलान होता है। और दोनों का मिलन हो करके वह सन्ध्या बन जाती है। मैंने बहुत पुरातनकाल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था। सबसे प्रथम जब मानव साधना के लिए आसन पर विद्यमान होता है तो आसन पर विद्यमान हो करके बेटा वह अपने को जानने की इच्छा करता है। सबसे प्रथम, वह प्रत्येक इन्द्रियों को ऊंचा बनाने की अपनी आन्तरिक भावना को उद्‌बुद्ध करता है। मेरे प्यारे। मन को प्रकाशित करता रहता है। वह वाक्‌ज्योति को उर्ध्वा बनाने के लिए तत्पर रहता है। वह चक्षु और घ्राण प्रत्येक इन्द्रिय को उस इन्द्रिय के जो स्वरूप हैं, अथवा उनका जो विषय है उनको वह जानने के लिए तत्पर होता है। तो यह जो ब्रह्माण्ड है, यह उसके लिए व्यापक रूप में दृष्टिपात आने लगता है। और जब तक मानव का जीवन व्यापकवाद में परणित नहीं हो जाता तब तक मेरे प्यारे! वह मानव साधना में सफलता को प्राप्त नहीं होता।

यौगिकता

मेरे प्यारे! वह अपनी इन्द्रियों के विषयों को बाह्य–जगत में प्रवेश कर देता है। बाह्य–जगत में जब वह दृष्टिपात करता रहता है, तो इसके पश्चात् वह आन्तरिक जगत् में, मानो अपने ही पिण्ड में इस ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करने लगता है। ये जो मानव के नेत्र दूरिता में दृष्टिपात करने लगते हैं, परन्तु उसी विषय को जो उसने दृष्टिपात किया है उसे वह अन्र्तहृदय में दृष्टिपात करने लगता है। जब वह अन्र्तहृदय में दृष्टिपात करता है तो यह बाह्य जो ब्रह्माण्ड है; बाह्य जो जगत् है वह आन्तरिक जगत मे प्रवेश होने लगता है। उस समय जब वह अपने में अपने को ही दृष्टिपात करने लगता है, तो प्रभु की जो अनुपमता है, प्रभु की जो महिमा है, उसे

दृष्टिपात करने लगता है। जैसे हमारे यहां आदि ऋषियों ने कहा है कि जब मानव को; इस मानवीय पिण्ड का निर्माण हुआ, तो इस वाणी की सबसे प्रथम 'प्रथमता' मानी गई है। वाणी ही भिक्षुक बन करके रहती है। यह वाणी ही एक याज्ञिक–स्वरूप बन करके रहती है। तो इसीलिए आचार्यों ने कहा कि प्रत्येक इन्द्रिय के अनुशासन का नाम मेरे पुत्रो! **यौगिकता** मानी जाती है। प्रत्येक इन्द्रिय पर अनुशासन होना बहुत अनिवार्य हैं और अनुशासन वह मानव करता है जो यौगिकता को जानता है। इन्द्रियों पर वह शासन करना जानता है। जब मानव को प्रत्येक इन्द्रिय के विषय का ज्ञान होता है; और ज्ञान उस प्राणी को होता हैं, जो बाह्य जगत और आंतरिक जगत दोनों को याज्ञिक रूप से इसके ऊपर अनुसंधान करने वाला होता है।

आओ मेरे पुत्रो! मैं आज तुम्हें कोई विशेषता देने नहीं आया हूं। विचार यह देने के लिए आया हूं कि हमें अनुशासन करना है। सबसे प्रथम हमें **अनुशासन** में जाना है। क्योंकि हम जब भी किसी भी कार्य में जैसे जब हम संध्या के लिए, संधि करने के लिए तत्पर होते हैं, तो वहां अनुशासन की आवश्यकता होती है। जैसे दो राष्ट्रों में किसी प्रकार का विवाद होता है; किसी प्रकार का राष्ट्रों में संधिपात नहीं होता, तो दोनों राष्ट्र मेरे पुत्रो! अपने अनुशासन में निहित हो करके और उसके पश्चात् वे अपनी संधि करते हैं। इसी प्रकार हमारा जो मनस्तत्त्व प्राणतत्त्व दोनों का विभाजन हो गया है। मुनिवरो! दोनों में संधि नहीं हो पाती तो उसके पश्चात् अनुशासन की आवश्यकता होती है दोनों की संधि से ही तो हमें मन और प्राण दोनों को संधि में लाना है। **उसी का नाम संध्या है।** हमारे इस मानव शरीर में दोनों की विभक्तता हो गई है। एक स्थली में मन की विभक्तता है, एक स्थली में प्राण विभक्त हो गए हैं। दोनों को अनुशासन में लाना है और दोनों को अनुशासन में लाने से पूर्व हमें अपने जीवन को इतना महान और अक्षत बनाना है जिससे हमारा संध्याकाल प्रिय हो जाए और हम उसमें सफलता को प्राप्त हो जाएं।

इन्द्रियों के विषयों का साकल्य

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे। महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज जब अपने आसन पर विद्यमान थे तो एक समय उनके हृदय में यह वेदना जागरूक हुई कि मैं इस महान् देवी सन्ध्या के समीप जाना चाहता हूँ। तो महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान हो करके गान गाने लगे, उद्गीत गाने लगे। जब उद्गीत गाने लगे तो उसके लिए कोई भी प्राणी हिंसक नहीं रहा। जब कोई प्राणी हिंसक नहीं रहा तो वह उद्गीत **वाणी** गाती रही वाणी उद्गीत गाती रही। गाते–गाते महत्ता को प्राप्त होने लगे। परिणाम "वृहीः कृताम् देवत्यम् लोकाः।" मेरे प्यारे! ब्रह्म लोकों में उनकी गति होने लगी। ऋषि का विचार एक महान् था। मेरे पुत्रों देखो! जब वह उद्गीत गाने लगी उस समय उद्गीत गाते–गाते वाणी में स्वार्थ भावना आ गई। जब वाणी में स्वार्थ भावना आ गई तो मेरे पुत्रो! वे जो मानव शरीर में जो असुर विद्यमान थे उन असुरों ने वाणी को छेदन कर दिया। जब वाणी छेदन हो गई तो अब ऋषि का जो ऊर्ध्वागति वाला जो संधि काल था वह अधोगति को प्राप्त हो गया। जब अधोगति को प्राप्त हो गया तो उसको संध्या की जो कड़ी थी, संध्या के जो वृत्त थे, उनका विच्छेद हो गया। विच्छेद होने के पश्चात् मार्कण्डेय ऋषि महाराज मौन हो गए। तो मुनिवरो देखो! ऋषियों ने यह कहा, कि कोई भी मानव साधना में जाना चाहता है तो उसमें 'स्वार्थपरता' नहीं होनी चाहिए। जिस भी काल में स्वार्थपरता हो जाती है उसी काल में असुर उसको छेदन कर देते हैं। तो इसीलिए मेरे प्यारे! महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज, जब वाणी उद्गीत गा रही थी क्योंकि गान ही गान गा रही थी। बेटा देखो! प्रभु का गान गा रही थी। तो जब वह प्रकृति का गान गाने लगी, ध्रुवागति का गान गाने लगी, उसी समय उसकी ध्रुवागति हो गई, स्वार्थपरता हो गई। क्योंकि योगियों को, साधक को मुनिवरों! जब जिस भी काल में स्वार्थपरता इन्द्रियों की आ जाती है, लोलुपता आ जाती है, उसी काल में उस मानव को गति ध्रुवा बन जाती है।

तो आओ मेरे पुत्रो! वह ध्रुवा गति वाली वाणी बन गई। जब वाणी बनी तो कुछ समय के पश्चात् ऋषि ने यह विचारा कि मैं **घ्राण** के द्वार पर जाता हूँ, जो घ्राण मेरा गान गाने लगे। अब मुनिवरों! घ्राण भी निस्वार्थ हो करके उद्‌गीत गाने लगी। जब घ्राण उद्‌गीत गाने लगी तो उद्‌गीत गाते—गाते मेरे प्यारे! ऋषि का संध्या मिलन होने लगा। जैसे ही मिलन होने के लिए तत्पर हुआ उसी काल में मेरे पुत्रो! घ्राण में स्वार्थपरता आ गई। अब इसीलिए बेटा! वह जहां सुगन्धि ही सुगन्धि लेती थी वहां दुर्गन्धि भी लेने लगी। जब दुर्गन्धि लेने लगी, सुगन्ध का अभाव हो गया तो उस समय स्वार्थपरता आ गई और स्वार्थपरता के आने के पश्चात् वह जो विचारधारा, जो संधि का काल था उसका विच्छेद हो गया अथवा असुरो ने उसको छेदन कर दिया। तो छेदन करने के पश्चात् अब ऋषि का संध्याकाल भी नहीं रहा। मेरे प्यारे! ऐसा मुझे स्मरण आता रहता है, ऐसा मुझे प्रतीत हुआ कि वह घ्राण उद्‌गीत गा रही थी। क्या गा रही थी? कि प्राण ध्वनि होती थी उस ध्वनि को वह अपने में ग्रहण कर रही थी। जब वह ग्रहण कर रही थी, तो पृथ्वी के सर्वत्र ब्रह्माण्ड की आभा मानो पृथ्वी का जितना ज्ञान और विज्ञान था उसके समीप आ रहा था। वह उसके समीप आने लगा। मानो देखो उसमें वह तत्परता को अपनी आभा में ही छेदन होने लगा। तो मेरे प्यारे! विचार आता है, 'शान्तनि कृताम् देवाः हिरण्यम गच्छत् प्रवहेः।' मेरे प्यारे! वही घ्राण जो देवत्व का उद्‌गीत गा रही थी, सुगन्धि ही ले रही थी। खनिजों में पृथ्वी के द्वारा, पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश हो गई थी, वही मेरे पुत्रो! स्वार्थ आते ही असुरों ने उसे छेदन कर दिया और वह ध्रुवा गति को प्राप्त हो गई। ध्रुवा—गति को प्राप्त हो गई तो अब ऋषि मौन हो गए। ऋषि ने विचारा कि **यह स्वार्थपरता नहीं होनी चाहिए।**

अब ऋषि साधना कर रहा है। साधना में अनुभव कर रहा है, मानों योग में प्रवेश कर रहा है, योग का अनुभव कर रहा है कि योग में जाने के लिए कौन—कौन सी वस्तु ऐसी हैं, जो योग से हमें दूरी ले जाती हैं, योग में पारायणता को प्राप्त नहीं होने देतीं। तो मेरे पुत्रो! ऋषि अब विचारने लगा। **चक्षु** के द्वार पर पहुंचा कि हे चक्षु! तू मेरा उद्‌गाता बन। हे चक्षु! तू मेरा उद्‌गाता बन करके उद्‌गीत गा। तो चक्षु उद्‌गीत गाने लगा। जब चक्षु उद्‌गीत गाने लगा। अब चक्षु ने उद्‌गीत गाया, वह सदैव शुद्ध पवित्र दृष्टिपात करती रही। अशुद्ध दृष्टिपात ही नहीं करती थी। जहां भी वह दृष्टि जाती वहीं प्रभु की प्रतिभा दृष्टिपात आने लगती। सुन्दरी को दृष्टिपात किया जाता; उस सुन्दरी में भी प्रभु की ही प्रतिभा दृष्टिपात होती। सुन्दरी सुन्दरता को दृष्टिपात करके, वहाँ भी प्रभु की आभा उसे प्राप्त होने लगी। जब प्राप्त होती रही दृष्टिपात करते हुए ब्रह्माण्ड में परणित हो गई। परिणाम यह हुआ कि उद्‌गीत गाता रहा उद्‌गाता बन करके। यह मानव शरीर रूपी जो यज्ञशाला है, इस यज्ञशाला में बेटा! उद्‌गीत गाने वाला कौन है? कौन होता बन करके, कौन उद्‌गीत गा रहा है बेटा? वे चक्षु हैं, वे नेत्र हैं। मेरे प्यारे! देखो, जब नेत्रों में कुछ समय के पश्चात् स्वार्थपरता आने लगी। जब स्वार्थपरता आने लगी तो अशुद्ध दृष्टिपात करने लगा। संकीर्णता में परणिता प्रतीत होने लगी। तो मेरे प्यारे! वहां भी असुरों ने नेत्रों को छेदन कर दिया। क्योंकि असुरों को यह ज्ञान था कि देवता हमें विजय करना चाहते हैं। तो मुनिवरों! देखों, जब उसमें स्वार्थपरता जहां आई, वहीं असुरों ने उसको छेदन कर दिया। तो जहाँ शुद्ध दृष्टि प्राथमिकता में ही दृष्टिपात कर रहा था, वहां नेत्रों के द्वारा बेटा स्वार्थ आते ही मेरे प्यारे! वह अशुद्ध दृष्टिपात करने लगा। जब करने लगा उसी के **"पश्चातम् ब्रह्माः कृत देवाः।"** असुरों ने बेटा छेदन कर दिया। मानो उद्‌गीत समाप्त हो गया। वे नाना चरणों में परणित हो गया। क्योंकि इस समाज में जब स्वार्थ आ जाता है तो रक्तमय जीवन बन जाते हैं। इन्द्रियों में जब स्वार्थपरता आ जाती है, तो मेरे प्यारे! इन्द्रिय इन्द्रिय नहीं रहती। उसमें दोनों प्रकार की आभा परणित हो जाती है।

आओ मेरे प्यारे! **योग में जो बाधक वस्तु है, वह सबसे प्रथम स्वार्थपरता कही जाती है।** आचार्य ने, जब मार्कण्डेय ऋषि ने यह विचारा कि यहाँ इसमें सूक्ष्मता है। तो वह **श्रोत्रों** के द्वार पहुंचा और श्रोत्रों से कहा हे श्रोत्रों! आओ तुम मेरी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके तुम उद्‌गाता बनो। मेरा उद्‌गीत गाने वाले बनो। अब उद्‌गीत गाने लगे। उन्होंने यथार्थ सुन करके उद्‌गीत गाना प्रारम्भ किया और उद्‌गीत गाता रहा। श्रोत्रों में जो

भी शब्द आता वही शब्द दर्शनों से घटित होने लगा। वह अन्तःकरण में **'शिक्षाम् देवात्राहस्तहिः'।** वह चित्त में विद्यमान् होने लगा। उन श्रोत्रों का सम्बन्ध नाना प्रकार की दिशाओं से अर्पित हो गया और अर्पित हो जाने के पश्चात् जो भी शब्द आता रहा, उसी शब्द में मेरे पुत्रो! वास्तविकता घटित होने लगी। दार्शनिकता में परणित होने लगा। परिणाम यह हुआ कि **''मानत्रहिः कृताम् देवत्याम् लोकाः।''** मेरे पुत्रों लोक–लोकान्तरों में जाना प्रारम्भ अथवा उत्थान हो गया। लोकों में जाना ही उसका उत्थान हो गया। परिणाम मेरे पुत्रो! उसमें स्वार्थपरता आ गई। जहां वह शुद्ध शब्दों को ग्रहण कर रहा था। जहां उद्गीत गा रहा था; वहां मेरे प्यारे! अशुद्धता को ग्रहण करने लगा। जब अशुद्धता को ग्रहण करने लगा तो वहां मुनिवरो! अशुद्धता आ गई। अशुद्धता आ करके उसी काल में मेरे प्यारे! असुरों को जब प्रतीत हुआ; असुरों ने श्रोत्रों को छेदन कर दिया। उद्गीत गाना प्रायः समाप्त हो गया। अब वह अशुद्ध शब्दों को ग्रहण करने लगा। परिणामः वेद का ऋषि यह विचारने लगा कि यौगिकता के लिए, संध्या में जाने के लिए स्वार्थपरता ही हमारे लिए बाधक हैं जो अशुद्धता में ले जाती है। तो मेरे पुत्रो! **'अब्रहाः कृतम् देवः।'** ऋषि यह चिन्तन करने लगा, मनन करने लगा कि हमारे यहाँ जहां ये श्रोत्र भी हैं मेरे प्यारे! असुरों ने इनको छेदन कर दिया है और वो छेदनता क्यों होती है? क्योंकि वह स्वार्थपरता से होती है इसीलिए स्वार्थ नहीं होना चाहिए।

मेरे प्यारे! ऋषि मौन हो गया। अब ऋषि ने विचारा मैं किसके द्वार पर जाऊं? मैं किसको यज्ञशाला का दूत बनाना प्रारम्भ करूं? मेरे प्यारे! वे **रसना** के द्वार पर पहुंचे। मेरे प्यारे! रसना से नतमस्तिष्क हो करके बोले, हे रसना! तू मेरा उद्गीत गा। रसना ने कहा, ''बहुत प्रियतम वह उद्गीत गाने लगी। वह वाणी से क्या? स्वादन से ऊंचे, ऊर्ध्वागति वाले रसों का पान करता रहा, पान करते–करते बेटा! देखो, उसमें भी कुछ समय के पश्चात् स्वार्थपरता आते ही असुरों ने यह जान लिया कि देवता तुम्हें रसना के द्वारा, रसों के द्वारा विजय करना चाहते हैं। तो मेरे प्यारे! आसुरों ने वाणी को छेदन कर दिया। वाणी को छेदन कर दिया तो बेटा! रसों के दो स्वरूप बन गए। रसों का विभाजन बन गया। स्वार्थपरता आते ही बेटा विभक्तता बन गई। तो इसीलिए वेद के आचार्यों ने अनुसन्धान किया और विचार–विनिमय करके बेटा! मार्कण्डेय ऋषि महाराज चिन्तन में लगे कि अब मैं क्या करूं? तो कहता है कि असुरों को विजय करना है। अब असुरों की हम विजय कैसे कर सकते हैं। क्योंकि बिना असुरों को विजय किए हम यौगिकता में प्रवेश नहीं कर सकते। हम यौगिकता में जाना चाहते हैं और आध्यात्मिकवाद को जानना चाहते हैं। आध्यात्मिक–विज्ञान में प्रवेश होना चाहते हैं। तो हम कैसे जा सकते हैं? जब तक हम असुरों का छेदन नहीं करेंगे तब तक हमारा जीवन किसी भी काल में ऊंचा नहीं बनेगा।

तो मेरे पुत्रो! महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज चिंतन करने लगे, मनन करने लगे। रात्रि समाप्त हो गई। दिवस आ गया, दिवस भी समाप्त हो गया। अन्न की भी इच्छा नहीं हो रही थी ऋषि को। इतने में ही स्वादेष्टय ऋषि महाराज उनके द्वार पर आए। स्वादेष्टय ऋषि महाराज बोले, कहो! मार्कण्डेय जी! आज आप आसन को नहीं त्याग रहे हो। रात्रि समाप्त हो गई है, दिवस भी समाप्त हो गया है। क्या कारण है प्रभु? मार्कण्डेय ऋषि महाराज बोले, महाराज! मैं अपनी शरीर रूपी यज्ञशाला का उद्गीत बनाना चाहता था। मैं उद्गान गाना चाहता था। अहा! प्रत्येक इन्द्रिय के दो स्वरूप बन जाते हैं। असुरों को विजय करना चाहता था। देवताओं को महान् बनाने की इच्छा बनी रही और वे नहीं बन सके। परिणाम यह है कि मैं मौन हो गया हूँ। चिन्तन कर रहा हूँ कि मैं संधि चाहता हूँ जिस वस्तु का विभाजन हो गया है। मैं ये विचार रहा हूँ कि कौन सी वस्तु है? जो सन्धि नहीं होने देती। मेरे प्यारे! ऋषि ने एक ही वाक्य कहा है कि यह **जो स्वार्थपरता है यह मानव की सन्धि नहीं होने देती।** जब तक मानव की प्रवृत्तियों में मेरे पुत्रो! **'अकृताम् देवाः'** जब तक स्वार्थपरता विचारों में बनी रहती है तब तक हमारी सन्धि किसी भी काल में नहीं होती। सन्धि उसी काल में होती है जब हमारे हृदय में यौगिकता आ जाती है और यौगिकता आ करके स्वार्थपरता समाप्त हो जाती है। मेरे प्यारे! इन्द्रियों के विषयों का हम साकल्य उसी काल में बना सकते हैं, जब तक हमारा विचार बाह्य जगत का आन्तरिक जगत में उसी रूप में प्रवेश हो

जाए, तो वह हमारी सन्धि हो जाती है। अब मेरे पुत्रो! देखो **मोक्ष** के मार्ग पर जाने के लिए गति करना प्रारम्भ कर देते हैं। क्योंकि मोक्ष को जाना ही मानव का कर्त्तव्य माना गया है। प्रत्येक मानव सन्धि इसीलिए चाहता है कि मेरा मोक्ष हो जाए। **प्रत्येक मानव सन्ध्या में इसीलिए प्रवेश होना चाहता है कि मेरा प्रभु से मिलन हो जाए।** चेतना में चेतना का मिलान हो करके, मैं सर्वत्ररूप एक चेतना के स्वरूप को दृष्टिपात करता रहूं।

आध्यात्मिकवाद व भौतिकवाद में अर्न्तद्वन्द्व

आओ मेरे पुत्रो! मैं अपने विचारों को उच्चारण करता हुआ दूर चला गया हूँ। विचार यह देने जा रहे थे कि हमारी संध्या क्या है? मुनिवरो! दो वस्तुओं का इस संसार में विभाजन हो गया है और वह जो विभक्तता है, वह केवल मन और प्राण की हो गई है। अब दोनों का जो सन्धिकाल होता है, दोनों का जब मिलन होता है तो मेरे पुत्रो हम आध्यात्मिक मार्ग के लिए गमन करते हैं। आध्यात्मिकवाद में जाना ही हमारा कर्त्तव्य है। अब एक ऋषि एक स्थली में तो यह विचार कर रहा है कि मेरा सन्धिकाल होना चाहिए। अपने में ही मानो मार्कण्डेय जैसे ऋषि ये विचार रहे हैं कि हमारा प्रकृति से भी मिलन होना चाहिए। यह जो प्रकृति है **'विभक्तम् ब्रह्मः वृताम् देवाः।'** यह जो हमारा प्रकृति से विच्छेद हो गया है। परमाणुवाद; एक परमाणुवादों का समूह बन करके एक स्थूल जगत् बन गया हैं, एक परमाणुओं का विभाजन हो करके, इस ब्रह्माण्ड में ओत–प्रोत या अन्तरिक्ष में ओत–प्रोत हो करके नाना प्रकार के परमाणु हमें दृष्टिपात होते हैं। वे परमाणु त्रसरेणुओं के रूप में हमें दृष्टिपात होते हैं। आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता तो यह चाहता है कि स्वार्थपरता नहीं होनी चाहिए। भौतिक–विज्ञानवेत्ता यह चाहता है कि मैं इस प्रकृतिवाद को जान करके अन्त के छोर को जाना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! वह परमाणुओं में लगा हुआ है। एक परमाणु से दूसरे परमाणु का मिलान करता रहता है और करता करता उनमें सर्वत्र सृष्टि को दृष्टिपात करता रहता है।

एक समय महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज, महर्षि सोमकृतिक ऋषि महाराज, ब्रह्मचारी कबन्धी और स्वांतत्त ऋषि महाराज ये विद्यमान थे और विद्यमान हो करके उन्होंने एक परमाणु की जानकारी की और उस परमाणु का जब विभाजन करके उसमें सर्वत्र ब्रह्माण्ड का बेटा देखो! सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक ही परमाणु के विभक्त होते ही विभाजन हो के उसका अक्षत उसमें दृष्टिपात होने लगा। परिणाम यह कि उन्होंने यह विचारा कि एक–एक परमाणु में सर्वत्र संसार की रचना होती, ऋषियों को दृष्टिपात होती। उससे उन्होंने अग्नि का, अग्नि परमाणुओं को पृथक किया। अग्नि तत्त्व वाले परमाणुओं को पृथक करके आग्नेयास्त्रों का निर्माण करने लगे। वायु में अग्नि का मिलान करना प्रारम्भ किया। तो उससे ऐसे यन्त्रों की उत्पत्ति हुई वे बाह्य जगत् में इस अंतरिक्ष में, और लोक–लोकान्तरों में गति करने वाले बने। मेरे पुत्रो! देखो, वास्तविकता यह थी कि परमाणु जब उन्होंने एकत्रित करने प्रारम्भ किए, तो समुद्रों में, जलों में, जल की आन्तरिकता में गति करना, उन्होंने प्रारम्भ किया। परिणाम! भौतिक विज्ञानवेत्ता यह चाहता रहता है कि मैं एक–एक परमाणुओं को जान करके, एक–एक अणुओं को जान करके प्रकृतिवाद को जानना चाहता हूँ। परन्तु प्रकृतिवाद का परमाणु एक उत्पन्न होता है, एक की जानकारी होती है द्वितीय उपस्थित हो जाता है। वह द्वितीय जैसे ही उपस्थित हो गया तृतीय की जानकारी की.....इसी प्रकार वह उस अन्त को, छोर को नहीं जा पाता। इससे मानव की प्रवृत्तियों में विभाजन होना प्रारम्भ हो जाता है। इतने में उस विज्ञान में भौतिकवाद में, संकीर्णवाद प्रारम्भ हो जाता है। उसमें वह **''ज्ञानाति् जन्मदण्डः ब्रह्मः लोकाः।''** उसमें ब्रह्म लोक में जाने की प्रवृत्ति नहीं रहती। वह केवल उन्हीं परमाणुओं में लगा रहता है। उन्हीं चित्रावलियों में लगा रहता हैं। लगे रहने का परिणाम यह होता है कि उसी में उसका जो शरीर **'आनन्द्रतम देवाः'** का शरीरान्त हो जाता है। शरीरान्त हो करके उसी प्रवृत्ति में जन्म ले करके पुनः उसी में परणित हो जाता है। परिणाम यह होता है कि वह अस्त्रों–शस्त्रों में लगा रहता है। राष्ट्र को वह सम्पदा देता रहता है। वह मानव को नष्ट करने की सामग्री का निर्माण कर रहा है; कहीं जीवन उत्पन्न नहीं होता।

मेरे प्यारे जब ऋषियों ने बहुत अनुसन्धान किया तो यही विचारा कि **यह जो भौतिकवाद है इसमें मानव को जीवन प्राप्त नहीं होता।** इसमें विकृतता प्राप्त होती है विभक्त क्रिया प्राप्त होती हैं। तो मेरे प्यारे! जितना भौतिकवाद में मानव प्रवेश करता है उतनी ही मानव में विभक्ता ओत–प्रोत हो जाती है क्योंकि उसमें अभिमान पूर्वक यंत्रों की उत्पत्ति होती रहती है। क्योंकि जितना भी मानव विभाजन करता रहता है; जानकारी करता रहता है उतना आध्यात्मिकवाद नहीं होता; दोनों के मिलन होने की प्रवृत्ति नहीं होती। उसमें तो केवल विभाजन हो रहा है और वह जो विभक्त क्रिया है वही इस मानव को ऐसे ढेर पर ले जाती है जहां उसके प्राण, शरीर भी अन्तिमता को प्राप्त हो जाता है। पुनः आता है, पुनः उसी में परणित हो जाता है। मेरे प्यारे! परिणाम यह कि जन्म–जन्मान्तर व्यतीत हो जाते हैं। मेरे प्यारे! **प्रकृतिवाद में वह अपनी साधना को प्राप्त नहीं कर रहा है।** वह केवल एक आभा में लगा हुआ है। **ऋषि मार्कण्डेय महाराज का यह अन्तिम विचार है। उन्होंने कहा है कि हम दोनों प्रकार के विज्ञान को जानना चाहते हैं परन्तु एक विज्ञान मानव की संधि नहीं होने देता। एक स्थलीयुक्त विज्ञान ऐसा है जो संधि होने देता है। तो इसीलिए दोनों प्रकार का विज्ञान जब मानव के समीप आता है तो भौतिकवाद और आध्यात्मिकवाद। आध्यात्मिकवाद तो देखो संधि को कहते हैं और भौतिकवाद विभक्तक्रिया को कहते हैं।** विभक्तक्रिया आती रहती है। अन्त में अभिमान के अंकुर जागरूक हो जाते हैं। अंतिम परिणाम बेटा! जन्म–जन्मान्तरों की आभा में परणित हो जाता है। मस्तिष्क में वे अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं जिन अंकुरों से वह इस प्रकृति के गर्भ को जानने के लिए स्थित बना हुआ है।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष विचारधारा प्रकट करने नहीं आया हूँ। तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव आध्यात्मिकवाद में प्रवेश होना चाहता है। मैं संधिकाल की चर्चाएं कल भी करूंगा। आज का विचार विनिमय यह कि दोनों प्रकार का विज्ञान हमारे समीप होना चाहिए। दोनों प्रकार के विज्ञान में मेरे प्यारे! **जो आध्यात्मिक विज्ञान है वो मोक्ष की पगडंडी है और भौतिकवाद इस प्रकृतिवाद में मानो परणित होने की पगडंडी हैं।** मुनिवरो देखो! वह जो पगडंडी है वह प्रतिभा है और वह स्वार्थमयी प्रतिभा है। मेरे प्यारे! **दोनों में अन्तर्द्वन्द्व जीवन का, मृत्यु का आ जाता है।** पुत्रो! आज का हमारा यह वाक्य क्या? आज के वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह कि महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज, वह गीत गाना चाहते थे एक स्थली में विज्ञान में प्रवेश होना क्योंकि हमारे यहां ऋषि–मुनि दोनों प्रकार के विज्ञान में जाने के लिए तत्पर रहे और अन्तिम जो उनकी प्रतिक्रिया बनी रही कि आध्यात्मिक विज्ञान कितना महान है? कितना पवित्र है? इसमें परणित होने के लिए ऋषियों ने अपने जीवन को इसमें आहुति प्रदान की।

आओ! मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह है कि आज यौगिक बनने के लिए एक संधि की चर्चा हम कर रहे थे। आज हम यौगिक बनना चाहते हैं। सन्धि करना चाहते हैं। अब दोनों की संधि कैसे होगी? कैसे होती है? **दोनों की संधि में मानवता की रूपरेखा है।** ये चर्चाएं हम कल करेंगे। इसके पश्चात् तुम्हें यौगिक वार्ताएं और वह तुम्हारे समक्ष, तुम्हारे समीप आ जाएगा कि योग किसे कहते हैं? योग क्या है? बेटा! देखो ये चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक्य क्या? कि हम प्रत्येक इन्द्रिय से उद्गीत गाने वाले बनें और उद्गीत गाते हुए, हमारा उद्गीत गाना ही हमारा कर्त्तव्य है। हमें उद्गाता बनना चाहिए। जब तक हम उद्गाता नहीं बनेंगे, तब तक याग नहीं करेंगे और जब तक याग नहीं करेंगे इस संसार को नही जानेंगे और **संसार को समेट करके हम अपने अन्तःकरण में दृष्टिपात जब तक नहीं करेंगे, तब तक हम संधि नहीं कर सकते।** यह है बेटा आज का वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा, मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। **आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय कि हम संसार में संधि के लिए आए हैं क्योंकि हमारा जिस वस्तु से विच्छेद हो गया है उससे मिलान करना चाहते हैं।** यह है आज का वाक्य। अब वेदों का पठन–पाठन होगा। अच्छा भगवन्।
दिनाँक : 19–4–79 स्थान : आर्य समाज, शक्तिनगर, अमृतसर।